विश्व प्रसिद्ध मिथिला पेंटिंग्स द्वारा सुसज्जित ऐतिहासिक
एवं आध्यात्मिक पवित्र ग्रंथ !!!

श्रीमद्भगवद्गीता

मैथिली संस्करण

परिकल्पना एवं अनुवादः

काजल कर्ण

(मैथिली दिवा)





श्रीमद्भगवद्गीता

मैथिली संस्करण

परिकल्पना एवं अनुवादः

काजल कर्ण

(मैथिली दिवा)

प्रकाशक:
ब्रोसिस पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स
2/15, दूसरी मंज़िल, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002 (भारत)
Tel: +91-11-23240099 / E-mail: brosispd@gmail.com
www.brosisindia.com

पहिल संस्करण 2019 में प्रकाशित
श्रीमद्भगवादगीत (मैथिली संस्करण)

ISBN: 9789388519137

परिकल्पना एवं अनुवाद: काजल कर्ण
प्रूफ़रीडर: हेमंत झा
मिथिला पेंटिग्स: अर्चना मिश्र, मिनाक्षी दास एवं आकृती झा

बिनय दत्ता द्वारा ब्रोसिस पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स के हेतु प्रकाशित

नेपालक वितरक:
बजरंगबली बुक इंटरप्राइज़ेज़
भत्केको पुल, चाबाहिल, काठमांडू
bajrangbalibooks@gmail.com

SRIMAD BHAGAVAD GITA by *KAJAL KARNA*

समर्पण

हमर जीवनक एकटा बर पैघ स्वप्न आ उपलब्धि में सँ एकटा ई उपलब्धि, ई पुस्तक हम अप्पन पूजनीय माय श्रीमती अंजली किरण आ बाबू जी श्री कमल किशोर लाल कर्ण जीक श्री चरण में सादर समर्पित करब जे हमर जीवनक केहनो कठिन सँ कठिन परिस्थिति के दृढ़तापूर्वक आ आत्मविश्वास के सँग निर्वहन करबाक ज्ञान देने छथि। हम अइजे किछु छी सबटा हिनका लोकनिक देन छनि।

हमरा प्रेम करयबाला प्रत्येक शुभचिन्तक के सेहो ई पुस्तक समर्पित छनि। ओ लोकनि छथि तऽ मैथिली दिवा यु० एस० ए० छैक।

देव, ॐ, कृष्णा आ सार्थिक बहुत प्रेमक सँग आहाँ सबहक लेल.....

काजल कर्ण (मैथिली दिवा)

प्रकाशकीय

श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दू सभक पवित्र ग्रन्थ में स एक अछि। करीब 5000 वर्ष पहिले महाभारत अनुसार भगवान श्री कृष्ण गीता सन्देश कुरुक्षेत्र के युद्ध भूमि पर अर्जुन के सुनेने रहथिन। मुख्यतः आत्मा आ परमात्मा के ऊपर चर्चा भेल ई ग्रन्थ में भगवान श्री कृष्ण कर्मयोग, ज्ञानयोग,आ भक्तियोग पर से हो अर्जुन के बहुत किछ कहने छथिन।

जेना हम सब कखनो काल समस्या स परेशान भ किकर्तव्याभिमूढ़ भ जाइत छी आ समस्या स लड़ के बजाय ओहि स भागऽ लगैत छी ठीक ओहिना अर्जुन बिचलित भ गेल छलाह तखन भगवान श्री कृष्ण ई उपदेश (गीता ज्ञान) देलखिन।

श्रीमद्भगवद्गीता विश्वभरि में आध्यात्मिक ज्ञान के भंडार के रूप में प्रख्यात अछि। गीता क अलग अलग बहुतो भाषा में अनुबाद भेल अछि परञ्च मैथिली में संपूर्ण गीता के अनुबाद आओर प्रकाशन क संभवतः ई पहिल प्रयाश थीक। मैथिली हमर सभक भाषा अछि आ श्रीमद्भगवद्गीता हमर सभक धरोहर या कहु सम्पदा। आ ई सम्पदा के हम सब मैथिल भाषी बेशी स बेशी उपयोग कऽ सकी ताहि हेतु ई पुस्तक के प्रकाशन केल गेल अछि। गीता के 700 श्लोक क मैथिली में अनुबाद (सरल भाषा) कऽ काजल कर्ण अपन बिद्वता के परिचय दऽ रहल छैथ साथै अप्पन सभक मिथिला आ मैथिलक इतिहास में वो अपन नाम स्वर्णक्षार में लिखा लेलैथ। लेखिका के ई प्रयास तखने सफल हेतै जखन ई किताब के पूजा के मंडप में सजा क राखै के जगह ई ज्ञानक भंडार के आत्मसात करबै अर्थात पढियौ आ बुझियौ ओहि के बाद जीवन में उतारियौ। हुनकर यही कार्य में सहयोग केनिहार सब गोटे धन्यबादक पात्र छियाह तथा मधुबनी निवासी

श्री हेमंत झा जे ई किताबक शुद्धिकारक अर्थात प्रूफरीडर छैथ हुनका बिशेष धन्यवाद।

हम एक प्रकाशक के रूप में आशा करैत छी भारत, नेपाल तथा पुरे विश्व में मैथिली बजनिहार आ बुझनिहार ई किताब के पढ़ैत तथा अपन भाषा आ संस्कृति के उत्थान में सहयोग करैत।

"जय मिथिला!! जय मैथिल!!!"

- **बिनय भूषण दत्ता**
प्रकाशक

शुभाशीष

काजलकें जखन टेक्सस, अमेरिकामे, एकटा महाधिवेशनमे विध्यापतिक गोसाओनि गीतपर शास्त्रीय नृत्य प्रस्तुत करैत देखने रही तँ दूटा गौरवक तत्काल अनुभूति भेल। पहिल ई जे अमेरिकामे सेहो जनकपुरक नाक ठाढ़े अछि! आ' दोसर जे हमरासभ जतए रहब मिथिला-मैथिलप्रतिक समर्पण रहबे करत! युवा सन्तति एकर मशाल मिझए नहि देत।

निःस्वार्थ भावसँ अपन भाषा आ संस्कृतिप्रति कर्मठताक दुर्लभ नामसभमे एकटा अछि जनकपुरक बेटी काजल कर्ण !! महासागर पार अपन कर्मस्थलमे गीत-संगीत-नृत्यक माध्यमसँ आ सेहो विशुध्द मैथिल परिधानक प्रयोग करैत अपन परिचितिक संरक्षण कए रहल ई नाम आब साहित्य दिस सेहो बढ़िरहल अछि जकर चमकब निश्चित छैक। 'गीता-सार' क मैथिली अनुवाद एकर प्रमाण थीक।

अनन्त शुभकामना सहित आशीष! जगमगाईत रहू !!

- **वृषेश चन्द्र लाल**
सांसद, राष्ट्रियसभा, संघीय संसद नेपाल
काठमाण्डू, 7/7/2019

ई किताबक लेखिका, काजल कर्ण के प्रति किछु बिशेष व्यक्ति के द्वारा देल गेल स्नेहक दू आखर

काजल! अहाँ तऽ मैथिलीक आन, बान आ शान छी। हमर सबहक आशीर्वाद अछि! "जय मिथिला!! जय मैथिल!!!"

- **डा. राजेन्द्र विमल**

वरिष्ठ साहित्यकार

***

बहुत गर्वक गप अछि, आई मैथिली, विदेशी धरती पर अप्पन संस्कृति और सभ्यता के परचम लहरा रहल अछि, एकटा सुसंस्कृत और बहुतहि सभ्य मिथिलानी के द्वारा।

- **आशुतोष सिह**

संगीतकार

***

वाह जतेक प्रशंसा करी कम होयत। मिथिला के नारी संस्कार में सब पर भारी। हमरा सब मैथिल के अहाँ पर गुमान अछि।

- **आभास लाभ**

गायक

काजल! अहाँक मैथिली प्रति स्नेह अनुकरणीय अछि। मिथिलानी भाषा आ साहित्यमे महत्वपूर्ण डेग बढ़ा रहल छथि इ हर्षक गप्प। हमर हार्दिक आशीष आ शुभकामना। "जय मिथिला !! जय मैथिल !!!"

- **आरती झा**

संस्थापिका 'सखी-बहिनपा'

***

काजल अहाँ सन पवित्र हँसमुखी सुन्दरी बहिन पाबि हमहुँ जुड़ा गेलहुँ। काजल अहाँ के आवाज अहाँक के मातृभाषा के लेल धन्यवाद शब्द बहुत छोट भऽ जाइये अतेक सुन्दर या जे किछ कही। अहिना सब मैथली एवं मैथिल सब के अपन आवाज एवं मातृप्रेम सों अभिप्रेरित करैत रही।

- **रजनी पल्लवी**

गायिका

***

"तन-मन-धन सब अर्पण, क्या लागे मेरा!"

ई पाँति अक्षरशः चरितार्थ होइत छनि सोशल मीडिया मे 'मैथिली दिवा:यू.एस.ए' कऽ नामसँ विख्यात, श्रीमती 'काजल कर्ण' पर। वर्तमान काल मे मिथिला-मैथिलीक लेल निःस्वार्थ भावसँ अपन सर्वस्व न्योछावर करऽ वला किछु गिनल-चुनल नाम मे 'काजल' कऽ नाम अग्रगण्य अछि। परदेस मे रहि मिथिलाक सभ्यता आ संस्कृतिक प्रचार-प्रसार ई, गीत-

संगीत संग नृत्यक माध्यमसँ, मिथिलेक परिधानमे विगत किछु समयसँ कऽ रहल छथि, जे समस्त मैथिल आ प्रवासी मैथिल लेल अनुकरणीय अछि। सम्प्रति मैथिली भाषा मे किछु लिखबाक क्रममे 'गीता-सार' कऽ 'मैथिली' अनुवादक रूप मे ई पोथी अपने सभहक सोझाँ अछि। काजलजी अपन एहि प्रयासक लेल वस्तुतः सराहनाक पात्रा थिकीह। हिनकर उज्ज्वल भविष्यक लेल हिनका अनंत शुभकामना।

- **रूपक शरर**

लेखक-निर्देशक (प्रेमक बसात - मैथिली फिल्म)

आभार

जगत जननी माँ जानकी जी के असीम अनुकम्पा सँ हमरा आई ई सौभाग्य प्राप्त भेल अछि जे हम हुनका सब गोटे के धन्यवाद दऽ सकी जे हमरा अप्पन लक्ष्य प्राप्ति में कोनो ने कोनो रूप में सहयोग कयने छथि। सबसँ पहिने हम सम्पूर्ण मिथिला वासी के हृदय सँ कोटि कोटि धन्यवाद दैत छियनि जे हमरा काजल कर्ण (मैथिली दिवा) के एतेक रास स्नेह बरसओने छथि। ओकर बाद हमर पूजनीय माय श्रीमती अंजलि किरण और पूज्य बाबूजी श्री कमल किशोर जी के धन्यवाद कहि कय हुनक अपमान नई करबनि। कियेक तऽ हमर माय-बाबूजी हमरा लेल भगवान सँ बढ़ि कऽ छथि ओ हमरा लेल सर्वोपरि छथि। ओकरा बाद अप्पन पति परमेश्वर श्री देवेन्द्र कर्ण जे सदिखन हमरा सम्हारैत छथि और हरेक काज में हमर सँग दैत छथि। विशेष धन्यवाद हम अपन सुपुत्र ॐ कर्ण, कृष्णा कर्ण आ सार्थक कर्ण के जाइत अछि जे हमरा अपन लक्ष्य के पूरा करबा में सदिखन प्रोत्साहित केलथि। हमर ज्येष्ठ भ्राता श्री सुजीत कर्ण आ भाउज श्रीमती रश्मि कर्ण जे हमरा मोन के सुदृढ़ रखबा में हमर मदति कयलनि।

हम अपन भतीज सामर्थ कर्ण आ भतीजी समृद्धि कर्ण के सेहो धन्यवाद देब जे अपन बाल-लीला सँ हरिदम हमर मोन के आनन्दित कयने रहैत छथि ।हम अप्पन बहिन स्व.कंचन किरण आ ससुर स्व. शिव चन्द्र लाल कर्ण दुनू के हमरा प्रति हुनका सबहक पवित्र अगाध प्रेम के लेल धन्यवाद कहबनि.....जिनकर सब के आकस्मिक निधन हमरा जीवन जीवाक महत्त्व सिखओलक। हम अपन नैहर, सासुर आ सम्पूर्ण मैथिल मिथिलानी के अपन अंतःकरण सँ आभार प्रकट करैत छी जे प्रत्यक्ष आ परोक्ष रूप में हमरा आगाँ बढ़बा लेल प्रोत्साहित कयने छथि। ई किताब

श्रीमदभागवत गीता के मैथिली में अनुवाद करबाक हमर स्वप्न छल जे आई पूर्ण भेल अहि स्वप्न के पूरा करबा में हमर प्रिय मित्र श्री बिनय भूषण दत्ता जीक पूर्ण सहयोग भेटल।

अहाँक मार्गदर्शन हेतु श्री हेमन्त झा भाईजी हम हृदय सँ धन्यवाद करैत छी सदैव अहाँक मार्गदर्शनक लेल हृदय सँ आभारी रहब। हे मैथिल अहाँ सब गोटे सदैव अप्पन स्नेह आ आशीर्वाद हमरा पर बनओने रहब।

अन्त में हम अप्पन गुरु एवम मैथिली दिवा के पथप्रदर्शक श्री आशुतोष सिंह जीक हृदय सँ धन्यवाद दैत अपन शब्द के विराम दैत छी।

"मिथिला के नारी कतबो मॉडर्न तैयो संस्कारी, दुनिया के कोनो कोन में रही अप्पन मातृभाषा सँ प्रेम करी"।

जय मिथिला! जय मैथिली !!

अथ प्रथमोऽध्याय

अर्जुनविषादयोग



दुनू सेना अर्थात पांडव और कौरव के मुख्य शूरवीरक आओर अन्य महान वीरक वर्णन

धृतराष्ट्र उवाच (धृष्टराष्ट्र कहैत छथिन):

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ 1-1 ॥

भावार्थ: धृतराष्ट्र कहैत छथिन- हे संजय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एकत्रित, युद्धक इक्षा रखनिहार हमर पाण्डु के पुत्र लोकनि की केला ? ॥ 1 ॥

भगवत गीता के सभटा अध्याय के पूरा पढ़ी:

संजय उवाच:

दृष्टवा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ 1-2 ॥

भावार्थ: संजय कहलखिन- ओई समय में राजा दुर्योधन पाण्डवक व्यूहरचनायुक्त सेना के देखलनि और द्रोणाचार्य के लग जाकय ई बात कहलखिन ॥ 2 ॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ 1-3 ॥

भावार्थ: हे आचार्य! अपनेक बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न के द्वारा

व्यूहाकार ठाढ़ कयल गेल पाण्डुपुत्र लोकनिक अहि पैघ सेना के देखियौक ॥ 3 ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ 1-4 ॥

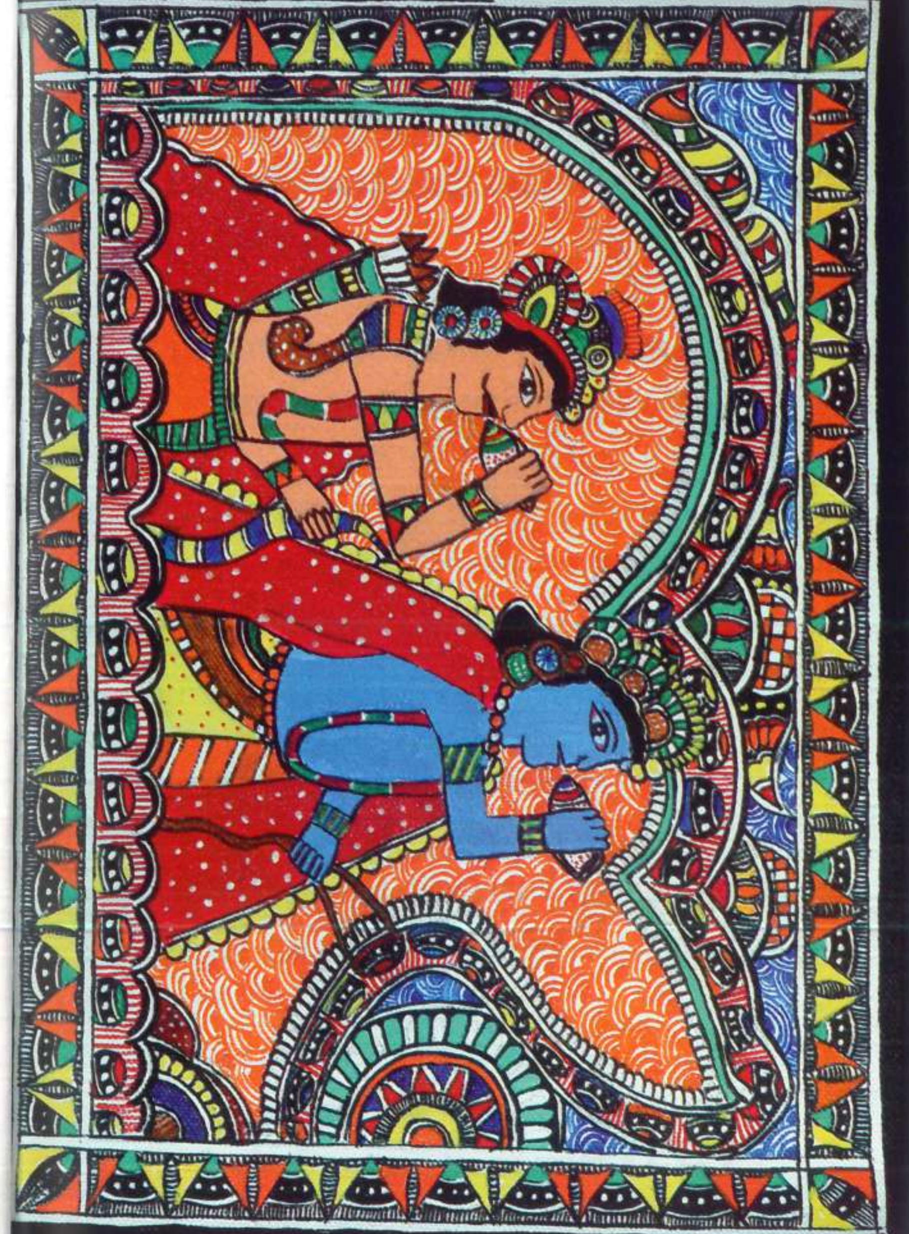
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ 1-5 ॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ 1-6 ॥

भावार्थ: अहि सेना में पैघ सँ पैघ धनुष बला एवम युद्ध में भीम और अर्जुन के समान शूरवीर सात्यकि और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान काशिराज, पुरुजित, कुन्तिभोज और पुरुषश्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदी के पाँचु पुत्र- ई सबटा महारथी छथि ॥ 4-6 ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य सञ्ज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ 1-7 ॥

भावार्थ: हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! अपना पक्ष में सेहो जे प्रमुख छथि, हुनको अपने बुझी लियौन। अहाँक जानकारी के लेल हमर सेना के जे-जे सेना प्रमुख छथि, हुनको बतबैत छियनि ॥ 7 ॥



भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ 1-8 ॥

भावार्थ: अपने-द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य संगहि ओहिने अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा ॥ 8 ॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ 1-9 ॥

भावार्थ: हमरा लेल अपन जीवनक आशा छोड़ि औरो बहुत शूरवीर अनेक प्रकारक अस्त्र-शस्त्र सँ सुसज्जित और सब-के-सब युद्ध में पारंगत आओर चतुर छथि ॥ 9 ॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ 1-10 ॥

भावार्थ: भीष्म पितामह द्वारा रक्षित हम्मर ई सेना सब प्रकार सँ अजेय अछि और भीम द्वारा रक्षित हुनका लोकनिक सेना के जीतबा में सुगम अछि ॥ 10 ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ 1-11 ॥

भावार्थ: एहिलेल सब मोर्चा पर अप्पन-अप्पन जगह पर अडिग रहैत अहाँ लोकनि सब नी: संदेह भीष्म पितामहे के सब दिष सँ रक्षा करी ॥ 11 ॥

***

दुनू सेनाक संख-ध्वनि के वर्णन

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिहनादं विनद्योच्चैः शंख दध्मो प्रतापवान् ॥ 1-12 ॥

भावार्थ: कौरव में बयोबृद्ध आओर बहुत प्रतापी पितामह भीष्म ओई दुर्योधन के हृदय में हर्ष उत्पन्न करैत उच्च स्वर सँ सिंह के दहाड़ के समान गरजिकय संख बजओलनि ॥ 12 ॥

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ 1-13 ॥

भावार्थ: एकर बाद शंख और नगाड़ा तथा ढोल, मृदंग और नरसिंघे आदि बाजा एकहि संग बाजि उठल। हुंकार ओ शब्द बहुत भयंकर भेल ॥ 13 ॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ 1-14 ॥

भावार्थ: अहिक संग उज्जर घोड़ा सँ युक्त उत्तम रथ में बैसल श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुन सेहो अलौकिक संख बजओलनि ॥ 14 ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशंख भीमकर्मा वृकोदरः ॥ 1-15 ॥

भावार्थ: श्रीकृष्ण महाराज पाञ्चजन्य नामक, अर्जुन देवदत्त नामक और भयानक कर्म बला भीमसेन पौण्ड्र नामक महाशंख बजओलनि ॥ 15 ॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ 1-16 ॥

भावार्थ: कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर अनन्तविजय नामक और नकुल तथा सहदेव सुघोष और मणिपुष्पक नामक शंख बजओलनि ॥ 16 ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ 1-17 ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ 1-18 ॥

भावार्थ: श्रेष्ठ धनुष धारी काशिराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि, राजा द्रुपद एवं द्रौपदी के पाँचो पुत्र और पैघ भुजाबला सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु- ई लोकनि , हे राजन्! सब दिश सँ अलग-अलग शंख बजओलनि ॥ 17-18 ॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ 1-19 ॥

भावार्थ: और ओई भयानक शब्द सँ आकाश और पृथ्वी के गुंजायमान करैत धृतराष्ट्रक अर्थात अहाँके पक्ष बला के हृदय विदीर्ण कय देलकनि ॥ 19 ॥

***

अर्जुन के सैन्य परिक्षण, गाण्डीव के विशेषता

अर्जुन उवाचः

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ 1-20 ॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ 1-21 ॥

भावार्थ: हे राजन्! एकरा बाद कपिध्वज अर्जुन मोर्चा बान्हिकाय डटल धृतराष्ट्र-संबंधियो सब के देखिकय, ओई शस्त्र चलयबाक तैयारी के समय धनुष उठाकय हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराज सँ ई वचन कहलखिन- हे अच्युत! हमर रथ के दुनू सेना के बीच में ठाढ़ कय दियौक ॥ 20-21 ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ 1-22 ॥

भावार्थ: और जा धरि हम युद्ध क्षेत्र में ठाढ़ भेल अई युद्ध अभिलाषी विपक्षी योद्धा लोकनि के नीक जँका देखि नहीं लियैक जे अई युद्ध रूपी व्यापार में हमरा किनका-किनकाक संग युद्ध करबाक योग्य अछि, ता धरि रथ के ठाढ़ राखु ॥ 22 ॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ 1-23 ॥

भावार्थ: दुर्बुद्धि दुर्योधन के युद्ध में हित चाहय बाला जे-जे राजा सब एहि सेना में अयलाहा, अई युद्ध करय बला के हम देखबैक ॥ 23 ॥

संजय उवाच (संजय कहैत छथिन):

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ 1-24 ॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ 1-25 ॥

भावार्थ: संजय बजलाह- हे धृतराष्ट्र! अर्जुन के कथनानुसार महाराज श्रीकृष्णचंद्र जी दुनू सेनाक के बीच में भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने तथा सम्पूर्ण राजाक सामने उत्तम रथ के ठाढ़ कय अहि प्रकार कहलखिन जे हे पार्थ! युद्ध के लेल जूटल अहि सब कौरवो के देखियौक ॥ 24-25 ॥

तत्रापश्यत्स्थितान् पार्थः पितृनथ पितामहान्।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥ 1-26 ॥

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥ 1-27 ॥

भावार्थ: एकर बाद पृथापुत्र अर्जुन ओहि दुनू सेना में उपस्थित कक्का, दादा-परदादा,गुरु लोकनि, मां, भाई, पुत्र, पौत्र सब के आओर मित्र, ससुर, आओर सुहृदय लोकनि सभ के सेहो देखलाह ॥ 26 और 27मक पूर्वार्ध ॥

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।
दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ 1-28 ॥

भावार्थ: ओहि उपस्थित सम्पूर्ण भाई लोकनि के देखिकय कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करुणा सँ विभोर भऽ शोक करैत ई बात बजलाह ॥ 27म के उत्तरार्ध आ 28म के पूर्वार्ध ॥

***

अर्जुनक विषाद, भगवन के नाम सबहक व्याख्या

अर्जुन उवाच:

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे में रोमहर्षश्च जायते ॥ 1-29 ॥

भावार्थ: अर्जुन बजैत छथि- हे कृष्ण! युद्ध क्षेत्र में ठाढ़ भेल युद्ध के अभिलाषी एही स्वजनसमुदाय के देखिकय हमर अंग शिथिल भेल जा रहल अछि आओर मुँह सूखा रहल अछि एवं हमर देह कम्पित एवम रोमांचित भेल जा रहल अछि ॥ 28म के उत्तरार्ध और 29 ॥

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ 1-30 ॥

भावार्थ: हाथ सँ गांडीव धनुष खसि रहल अछि आओर चाम सेहो जरि रहल अछि और हमर मोन भ्रमित सन भय रहल अछि, ताहि दुआरे हम ठाढ़ रहबा लेल सेहो समर्थ नहीं छी ॥ 30 ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ 1-31 ॥

भावार्थ: हे केशव! हम लक्षण के सेहो विपरीते देखि रहल छीऔर युद्ध में अपन-लोक के सेहो कल्याण नहि देखना जा रहल अछि ॥ 31 ॥

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।

कि नो राज्येन गोविद कि भोगैर्जीवितेन वा ॥ 1-32 ॥

भावार्थ: हे कृष्ण! हम नै तऽ विजय चाहैत छी आ ने राज्य के सुख। हे गोविन्द! हमरा लोकनि के एहेन राज्य के की प्रयोजन अछि अथवा एहेन भोग सँ आ जीवन सँ सेहो की लाभ ? ॥ 32 ॥

येषामर्थे काङक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ 1-33 ॥

भावार्थ: जिनका लेल राज्य, भोग और सुखादिक अभीष्ट अछि, वैह लोकनि धन और जीवन के आशा त्यागिकय युद्ध में ठाढ़ छथि ॥ 33 ॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ॥ 1-34 ॥

भावार्थ: गुरुजन, कक्का लोकनि, बच्चा सब और ओहि प्रकारें दादा, मामा, ससुर, पौत्र, सार तथा औरो सम्बन्धी लोकनि छथि ॥ 34 ॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः कि नु महीकृते ॥ 1-35 ॥

भावार्थ: हे मधुसूदन! हमरा मरलो पर अथवा तीनू लोक के राज के लेल सेहो हम हिनका लोकनि के मारय नहीं चाहैत छियैन्ह, तऽ फेर पृथ्वीक लेल कहले की जाय ? ॥ 35 ॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्न का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥ 1-36 ॥

भावार्थ: हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के संतान सभ के मारि कय हमरा लोकनि के प्रसन्नता होयत की? अहि आततायि लोकनि के मारि कय तँ हमरे सब के पाप लागत ॥ 36 ॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ 1-37 ॥

भावार्थ: अतएव हे माधव! अपनहि बान्धव धृतराष्ट्र के पुत्र सब के मारबाक लेल हम योग्य नहि छी कियैक तऽ अपनहि कुटुम्ब के मारि कय हम सब सुखी कोना कय होयब ? ॥ 37 ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ 1-38 ॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ 1-39 ॥

भावार्थ: यद्यपि लोभ से भ्रष्टचित्त भेल ई लोकनि कुल के नाश सँ उत्पन्न दोष के आओर मित्र लोकनि सँ विरोध करबा में पाप के नहि देखैत छथि, तैयो हे जनार्दन! कुल के नाश सँ उत्पन्न दोष के बुझय बला हमरा लोकनि के एही पाप सँ हटबाक लेल कियैक ने विचार दरबाक चाही ? ॥ 38-39 ॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ 1-40 ॥

भावार्थ: कुल के नाश सँ सनातन कुल-धर्म नष्ट भय जाईत छैक और धर्म के नाश भऽ सम्पूर्ण कुल में पाप सेहो बहुत पसरि जाईत छैक ॥ 40 ॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥ 1-41 ॥

भावार्थ: हे कृष्ण ! पाप के अधिक बढ़ि गेला सँ कुल के स्त्रीगण सेहो दूषित भय जाईत छथि और हे वार्ष्णेय ! स्त्रीगण के दूषित भेला पर वर्णसंकर उत्पन्न होइत अछि ॥ 41 ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ 1-42 ॥

भावार्थ: वर्णसंकर कुलघाति कें आ कुल के नरक में लय जेबाक लेल होइत अछि। लुप्त भेल पिण्ड और जल बला क्रिया अर्थात श्राद्ध आओर सँ वंचित हिनकर पितर सब सेहो अधोगति के प्राप्त होइत छथि ॥ 42 ॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ 1-43 ॥

भावार्थ: एही वर्णसंकरकारक दोष सँ कुलघातियों के सनातन कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट भय जाइत छैक ॥ 43 ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ 1-44 ॥

भावार्थ: हे जनार्दन ! जिनकर कुल-धर्म नष्ट भऽ गेल छैन, एहेन मनुख के अनिश्चितकाल तक नरक में वास होइत छन्हि, एहेन हम सब सुनैत आयल छी ॥ 44 ॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ 1-45 ॥

भावार्थ: हा ! शोक ! हम सब बुद्धिमान रहितहु महान पाप करबाक लेल तैयार भऽ गेल छी, जे आदमी राज्य और सुख के लोभ में अपनहि लोक के मारबाक लेल तैयार भऽ गेल छी ॥ 45 ॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ 1-46 ॥

भावार्थ: यदि हम शस्त्ररहित रहि एवं सामना नई कराय बला के शस्त्र हाथ में लेने धृतराष्ट्र के पुत्र रण में मारि दिये तऽ ओ मरनाईयो हमरा लेल बेसी कल्याणकारक होयत ॥ 46 ॥

संजय उवाच (संजय बजैत छथि):

एवमुक्त्वार्जुनः सङ्ख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ 1-47 ॥

भावार्थ: संजय बजलाह- रणभूमि में शोक सँ उद्विग्न मोन बला अर्जुन एहि तरहें कहिकय, बाणसहित धनुष के त्यागिकय रथ के पछिला भाग में बैसी गेलाह ॥ 47 ॥

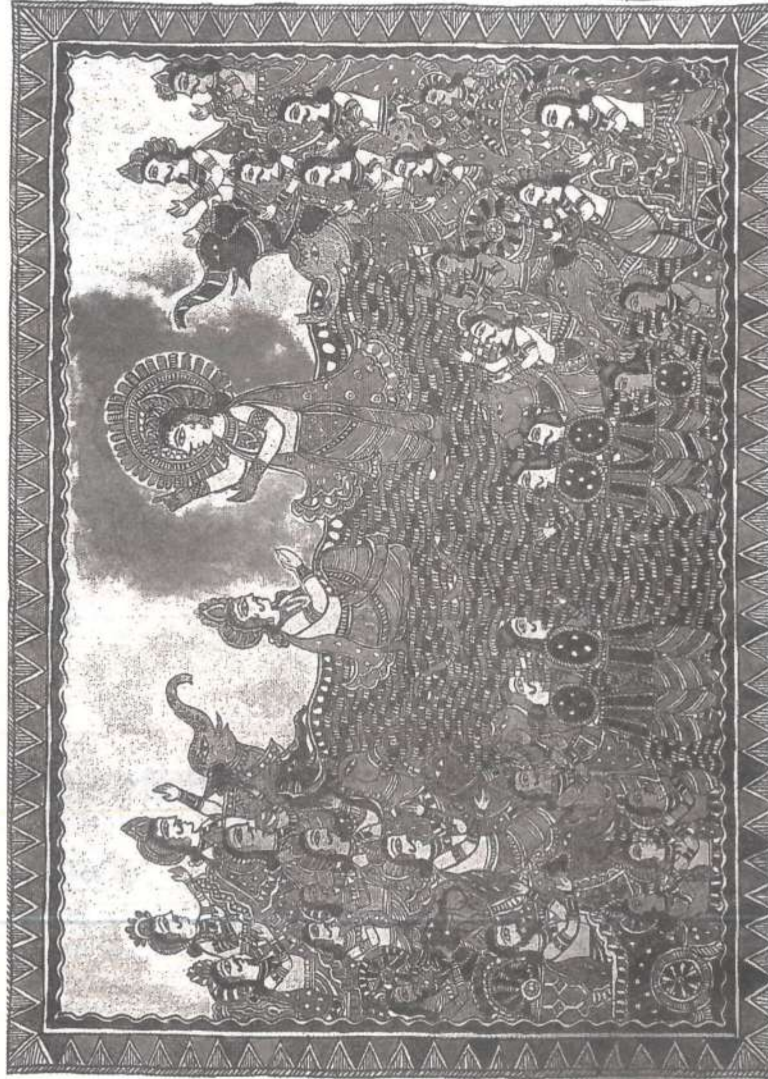
***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ 1 ॥

***

अथ द्वितीयोऽध्याय

सांख्ययोग



अर्जुनक कायरताक विषय में श्रीकृष्णार्जुन - संवाद

संजय उवाच:

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ 2-1 ॥

भावार्थ: संजय बजलाह- ओहि तरहक करुणा सँ व्याप्त आओर नोर सँ भरल तथा व्याकुल नैन बला शोकयुक्त ओहि अर्जुनक प्रति भगवान ई वचन कहलखिन ॥ 1 ॥

श्रीभगवानुवाच:

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ 2-2 ॥

भावार्थ: श्रीभगवान कहैत छथिन- हे अर्जुन! एहन बिषम स्थिति में आँहा के ई मोह कतऽ सऽ प्राप्त भेल? कियेकी ने तऽ ई श्रेष्ठ पुरुष द्वारा आचरित अछि, ने स्वर्ग आ ने कीर्तियो के देबय बला अछि ॥ 2 ॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ 2-3 ॥

भावार्थ: एहिलेल हे अर्जुन! नपुंसकता के जुनि प्राप्त होई, अहाँ में ई उचित नही जान परैछ। हे परंतप! हृदय के तुच्छ दुर्बलताक त्यागिकय युद्ध के लेल ठाढ़ भऽ जाऊ ॥ 3 ॥

अर्जुन उवाचः

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ 2-4 ॥

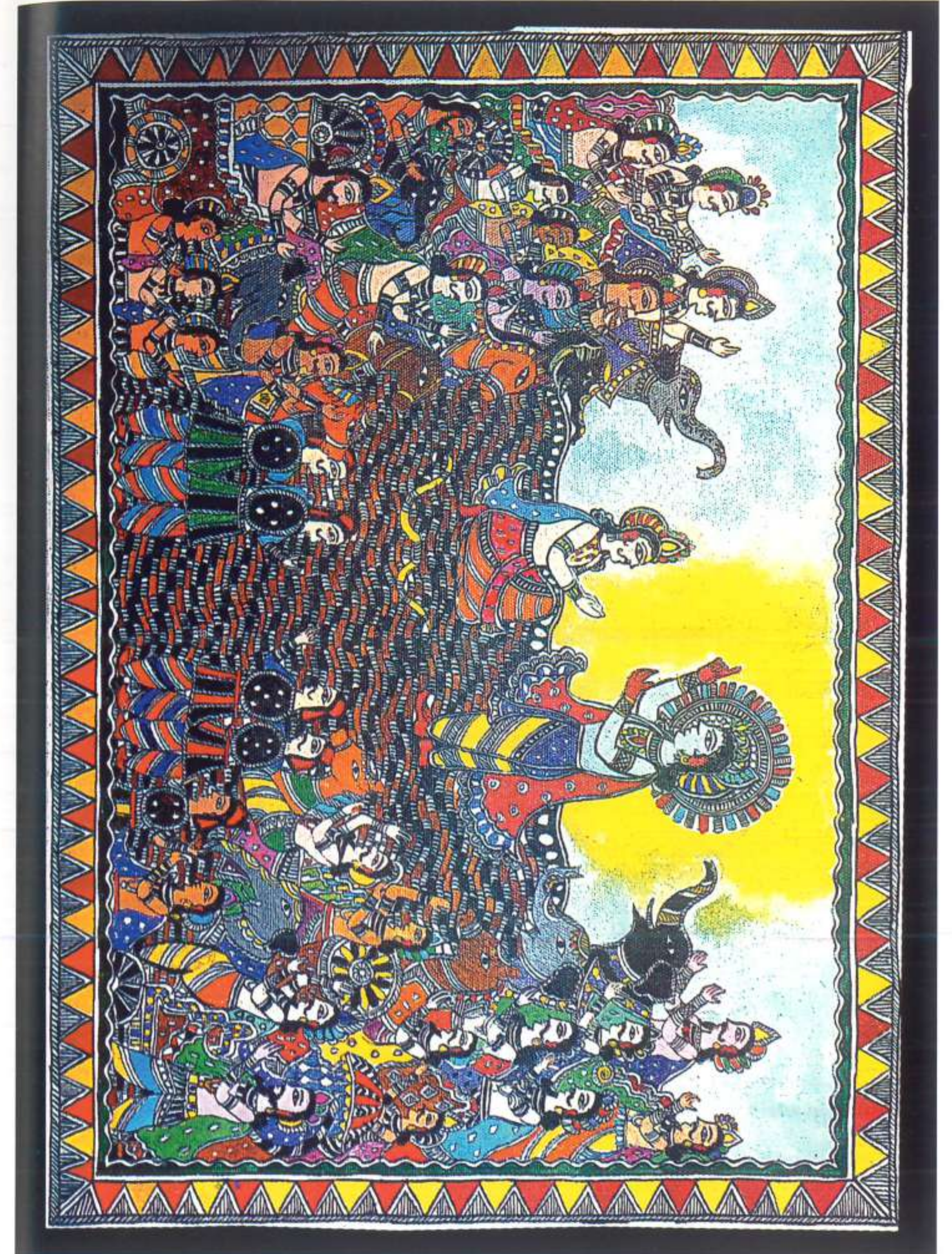
भावार्थः अर्जुन बजलाह- हे मधुसूदन! हम रणभूमि में कोन तरहें बाण सँ भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ब? कियेक तऽ हे अरिसूदन! ओ दुनू लोकनि हमरा लेल पूजनीय छथि ॥ 4 ॥

गुरूनहत्वा हि महानुभावा-ञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ 2-5 ॥

भावार्थः ताहिलेल अई महानुभाव गुरुजन सब के नई मारिकय हम अहि लोक में भीखक अन्नो खेनाई बेसी कल्याणकारी बुझैत छी कियेक गुरुजन के मारिकय सेहो अहि लोक में रुधिर सँ सनल अर्थ और कामरूपी भोगे के तऽ भोगब ॥ 5 ॥

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो-यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥ 2-6 ॥

भावार्थः हम तऽ इहो नहि जनैत छी जे युद्ध केनाइ और नई केनाइ - अहि दुनू में सँ कोन चीज श्रेष्ठ अछि, अथवा इहो नई जनैत छी जे हुनका सँ हम जीतब या वो हमरा सँ जितता। और जिनका मारिकय हम जीबैतो नई चाहैत छी, वैह हमर आत्मीय धृतराष्ट्र के पुत्र हमरा सँ मुकाबला के लेल ठाढ़ छथि ॥ 6 ॥



कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्
॥ 2-7 ॥

भावार्थ: ताहिलेल कायरता रूपी दोष सँ उपहत होइत स्वभाव बला तथा धर्म के विषय में मोहित चित्त भेलहुँ हम अहाँसँ पुछैत छी कि जे साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वैह हमरा लेल कहु कियेक तँ हम अहाँक शिष्य छी,ताहिलेल अपनेक शरण में छी हमरा शिक्षा देल जाउ ॥ 7 ॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या- द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं- राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ 2-8 ॥

भावार्थ: किएक तँ भूमि में निष्कण्टक, धन-धान्य सम्पन्न राज्य के और देवता सभक स्वामित्व के प्राप्त कईयो कऽ सेहो हम ओहि उपाय के नहि देखि पाबि रहल छी, जे हमर इन्द्रिय के सुखबई बला शोक के दूर कय सकय ॥ 8 ॥

संजय उवाच:

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप।
न योत्स्य इतिगोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ 2-9 ॥

भावार्थ: संजय बजलाह- हे राजन्! निद्रा के जीतय बला अर्जुन अंतर्यामी श्रीकृष्ण महाराज के प्रति अई तरहें कहिकय पुनः श्री गोविद भगवान् सँ 'युद्ध नई करब' ई स्पष्ट रूपेण कहिकय चुप भय गेलाह ॥ 9 ॥

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदंतमिदं वचः ॥ 2-10 ॥

भावार्थ: हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! अंतर्यामी श्रीकृष्ण महाराज दुनू सेनाक बीच में शोक करैत ओई अर्जुन के देखि हँसैत ई वचन बजलाह ॥ 10 ॥

***

गीताशास्त्र के अवतरण

श्री भगवानुवाच अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ 2-11 ॥

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथिन, हे अर्जुन! अहाँ ने शोक करय योग्य मनुष्य सब के लेल शोक करैत छी और पंडित सब जेकाँ वचन सब कहै छी, लेकिन जिनकर प्राण चली गेलैन हें, हुनका लेल और जिनकर प्राण नहि गेलैन हें हुनका लेल पंडित लोकनि शोक नहि करैत छथि ॥ 11 ॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ 2-12 ॥

भावार्थ: ने तँ एहने छैक जे हम कोनो काल में नहि छलहुँ, अहाँ नहि छलहुँ ई राजा लोकनि नहि छलाह आ ने ईहो छैक जे अहि सँ आँगा हम सब नई रहब ॥ 12 ॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ 2-13 ॥

भावार्थ: जेना जीवात्मा के एही देह में बालपन, युवावस्था और वृद्धावस्था होइत अछि, तहिना दोसर देह के प्राप्त होइत छैक, ओहि विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होइत अछि ॥ 13 ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ 2-14 ॥

भावार्थ: हे कौन्तेय! सर्दी-गर्मी और सुःख दुःख के दई वला इन्द्रिय और विषयक संयोग तऽ उत्पत्ति-विनाशशील और अनित्य होइछ, ताहिलेल हे भारत! ओकरा अहाँ सहन करू ॥ 14 ॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ 2-15 ॥

भावार्थ: कियेकी हे पुरुषश्रेष्ठ! दुःख-सुःख के सामान बुझय बला जाहि धीर पुरुष के ई इन्द्रिय और विषय के संयोग व्याकुल नहि करैछ, वो मोक्ष के पात्र होइत अछि ॥ 15 ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्वदर्शिभिः ॥ 2-16 ॥

भावार्थ: असत् वस्तु के तऽ सत्ता नहि छैक आओर सत् के अभाव नहि छैक। एही प्रकारे एही दुनू तत्व तत्वज्ञानी पुरुष लोकनि के द्वारा देखल गेल छैक ॥ 16 ॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ 2-17 ॥

भावार्थ: नाशरहित तँ तू ओकरा जान, जाहिसँ ई सम्पूर्ण जगत्- दृश्यवर्ग में व्याप्त छैक। एही अविनाशी के विनाश करबा लेल क्यो समर्थ नही अछि ॥ 17 ॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ 2-18 ॥

भावार्थ: एही नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्मा के ई सब शरीर नाशवान कहल गलैक छैक, ताहिलेल हे भरतवंशी अर्जुन! अहाँ युद्ध करू ॥ 18 ॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ 2-19 ॥

भावार्थ: जे एही आत्मा के मारय बला बुझैत अछि आ जे एकरा मरल मानैत अछि, ओ दुनू ई नहि जनैत अछि जे वास्तव में ने तऽ कियो ककरो मारैत छैक आ ने ककरो द्वारा मारल जाइत छैक ॥ 19 ॥

न जायते म्रियते वा कदाचि-न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो-न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ 2-20 ॥

भावार्थ: ई आत्मा ने तऽकोनो कॉल में जन्मैत छैक आ ने मरैत छैक तथा ने ई उत्पन्न भऽ कऽ फेर सँ होइ बला छैक ई आत्मा अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन छैक, शरीर के मरबा पर सेहो ई नहि मारल जाइछ ॥ 20 ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ 2-21 ॥

भावार्थ: हे पृथापुत्र अर्जुन! जे पुरुष एही आत्मा के नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जनैत अछि, वो पुरुष केना ककरो मारि सकैत छैक आ केना ककरो मारतैक ? ॥ 21 ॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा- न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ 2-22 ॥

भावार्थ: जेना मनुख अपन पुरान वस्त्र के त्यागि दोसर नया वस्त्र धारण करैत अच्छी, ओहिना जीवात्मा पुरान देह के त्यागि दोसर नव देह के प्राप्त होइछ ॥ 22 ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ 2-23 ॥

भावार्थ: एहि आत्मा के ने कोनो शस्त्र काटि सकैछ, एकरा आगि नई जरा सकैछ, एकरा जल नहि गला सकैछ आ ने वायु सूखा सकैछ ॥ 23 ॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ 2-24 ॥

भावार्थ: कियेक तऽ ई आत्मा अच्छेद्य, अदाह्य,अक्लेद्य और निःसंदेह अशोष्य अछि आओर ई आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहय बला और सनातन अछि ॥ 24 ॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ 2-25 ॥

भावार्थ: ई आत्मा अव्यक्त छैक, ई आत्मा अचिन्त्य छैक और एहि आत्मा के विकाररहित कहल जाइत छैक। ताहि कारण हे अर्जुन! एही आत्मा के जेना बताओल गेल तेना बुझिकय अहाँ शोक करय योग्य नहि छी अर्थात् तोहार शोक करनाई उचित नई छी ॥ 25 ॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥ 2-26 ॥

भावार्थ: लेकिन यदि अहाँ एहि आत्मा के हरिदम जन्मबय आओर हरिदम मरय बला मानैत छियैक, तैयो हे महाबाहो! अहाँ एहि प्रकारें शोक करय योग्य नहि छी ॥26॥

जातस्त हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ 2-27 ॥

भावार्थ: कियेक तँ मान्यतानुसारो जेकर जन्म भेल छैक ओकर मृत्यु निश्चित छैक और मरल के जन्मो निश्चित छैक। अहू प्रकारें बिना उपाय बला विषय पर अहाँ शोक करय योग्य नहि छी ॥ 27 ॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ 2-28 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जन्म सँ पहिने अप्रकट छल और मरलाक बादो अप्रकट होइ बला छैक, खाली बीचे टा में प्रकट होइछ, तखन एहेन स्थिति में शोक केला सँ फायदे की ? ॥ 28 ॥

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन- माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ 2-29 ॥

भावार्थ: कोनो महापुरुष एही आत्मा के आश्चर्य सँ देखैत अछि आओर ओहिना दोसर कोना महापुरुष एकर तत्व के आश्चर्य सँ वर्णन करैत अछि आओर दोसर कोनो अधिकारी पुरुषे एकरा आश्चर्य सँ सुनैत अछि आओर कियो-कियो तऽ सुनियोकय एकरा नहि बुझैत अछि ॥ 29 ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ 2-30 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! ई आत्मा सबकें शरीर में हरिदम अवध्य (जेकर वध नहि कयल जा सकय) छैक। ताहि कारन अहाँ सम्पूर्ण प्राणी के लेल शोक करय जोगर नहि छी ॥ 30 ॥

* * *

क्षत्रिय धर्म और युद्ध करबाक आवश्यकता के वर्णन

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ 2-31 ॥

भावार्थ: संगहि अपन धर्मो के देखिकय अहाँ भय करय योग्य नहि छी अर्थात् अहाँकि भय नहि करबाक चाही किएक तँ क्षत्रिय के लेल धर्मयुक्त युद्ध सँ बढिकय दोसर कोनो कल्याणकारी कर्त्यव्य नहि छैक। ॥ 31 ॥

यदृच्छया चोपपन्नां स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ 2-32 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! अपने-आप भेटल आओर खुजल स्वर्ग रूपी द्वार सन आओर एही तरहक भाग्यवाने क्षत्रिय के भेंटि पबैत छन्हि ॥32 ॥

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ 2-33 ॥

भावार्थ: लेकिन यदि अहाँ एही धर्मयुक्त युद्ध के नहि करब तऽ स्वधर्म

आओर कीर्ति के हेराय कय पापक भागी बनब ॥ 33 ॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
सम्भावितस्य चाकीर्ति- र्मरणादतिरिच्यते ॥ 2-34 ॥

भावार्थ: संगहि सब आदमी अहाँक अपकीर्ति के बहुत समय धरि बात करथुन्ह आओर भद्र पुरुष के लेल अपकीर्ति मरणो सँ बढिकय होइत छैक ॥ 34 ॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ 2-35 ॥

भावार्थ: लोक सबकें नजरि में सम्मानित भऽ आब लघुता के प्राप्त होयत,ओहो महारथी लोकनि अहाँके भय के कारन युद्ध सँ भागल मानय लगताह ॥ 35 ॥

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ 2-36 ॥

भावार्थ: अहाँक बैरी लोकनि अहाँक सामर्थ्य के निदा करैत अहाँके बहुतो कुवचन सेहो कहता, ओहि सँ बेसी दुःख आओर की हेतैक ? ॥ 36 ॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ 2-37 ॥

भावार्थ: या तऽ युद्ध मरबाक उपरान्त स्वर्ग प्राप्त होयत अथवा जीत कय पृथ्वी के राज्य भोगब। ताहि कारण हे अर्जुन! अहाँ युद्ध के निश्चय कय ठाढ़ भऽ जाऊ ॥ 37 ॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ 2-38 ॥

भावार्थ: जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुख के समान बुझिकय, ओकर बाद युद्ध के लेल तैयार भऽ जाऊ,एही प्रकारक युद्ध कयला सँ अहाँकि कोनो प्रकारक पाप नहि लागत ॥ 38 ॥
कर्मयोगक विषय के उपदेश

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ 2-39 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! ई बुद्धि अहाँक लेल ज्ञानयोग के सम्बन्ध में कहल गेल आओर आब अहाँ एकरा कर्मयोग के (अध्याय 3 श्लोक 3 में एकर विस्तार देखल जाओ)

सम्बन्ध में सुनु- जाहि बुद्धि सँ युक्त भेल अहाँ कर्मक बंधन कें।
भली-भाँति त्यागि देबैक अर्थात सबटा नष्ट कय देबैक ॥ 39 ॥

यनेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवातो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ 2-40 ॥

भावार्थ: एही कर्मयोग में आरम्भ अर्थात बीज के नाश नहि होइत छैक आओर उलटा फलरूपी दोषो नहि छैक, बल्कि एही कर्मयोगी रूपक धर्म के थोड़बो साधन जन्म-मृत्यु रूपी महान भय सँ रक्षा करैत अछि ॥ 40 ॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाका ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ 2-41 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! एही कर्मयोग में निश्चयात्मक बुद्धि एकहि टा होइत अछि, किन्तु अस्थिर विचार बला विवेकहीन सकाम मनुष्यक बुद्धि सभ निश्चिते बहुतहु भेद बला आओर अनन्त होइत अछि ॥ 41 ॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥ 2-42 ॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविश्लेषबहुलां भोगैश्वर्यगति प्रति ॥ 2-43 ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ 2-44 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! जे लोकनि भोग विलास में तल्लीन भऽ रहल छथि, जे कर्मफल के प्रशंसक वेदवाक्य में प्रीति रखैत छथि,जिनका हिसाब सँ स्वर्गे परम प्राप्य चीज छनि आओर जे स्वर सँ बढ़िकय कोनो दोसर चीजे नहि

छैक - यैह कहय बला, ओ अविवेकी लोक एही प्रकार के जाहि पुष्पित अर्थात देखावटी शोभायुक्त वाणी कहैत छथि, जे कि जन्मरूप कर्मफल देबय बला एवं भोग तथा ऐश्वर्यक प्राप्ति के लेल नाना प्रकारक- क्रियाक वर्णन करय बला छथि, ओहि वाणी द्वारा जिनकर चित्त हरि लेल गेल छन्हि,जे भोग आओर ऐश्वर्य में अत्यन्त आसक्त छथि, ओहि पुरुष लोकनि के परमात्मा में निश्चियात्मिका बुद्धि नहि होइत छन्हि ॥ 2-44 ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ 2-45 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! वेद उपरोक्त रूप सँ तीनु गुणक कार्य रूपी समस्त भोगक तथा ओकर साधनक प्रतिपादन करय बला छथि, ताहि कारन अहाँ ओहि भोग एवं हुंकार साधना में आसक्तिहीन, हर्ष-शोकादि द्वंद्व सँ रहित, नित्यवस्तु परमात्मा में स्थित योग (अप्राप्तक प्राप्ति के नाम 'योग' छैक।) क्षेम (प्राप्त वस्तुक रक्षा के नाम 'क्षेम' छैक) के नहि चाहय बला आओर स्वाधीन अन्तःकरण बला होउ ॥ 45 ॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ 2-46 ॥

भावार्थ: सभ तरह सँ परिपूर्ण जलाशय के भेट गेलाक उपरान्त छोट जलाशय के मनुष्य के जतेक प्रयोजन रहैत अछि, ब्रह्म के तत्व सँ बुझाय बला ब्राह्मण के समस्त वेदो में ओतबहि प्रयोजन रही जाइत छैक ॥ 46 ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ 2-47 ॥

भावार्थः अहाँक अधिकार खाली कर्म करबाक अछि, ओकर फल में कथमपि नहि। ताहिलेल अहाँ कर्मक फल हेतु अधीर नई होउ आओर कर्म नई करबाक आसक्ति सेहो नहि लाऊ ॥ 47 ॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ 2-48 ॥

भावार्थः हे धनंजय! अहाँ आसक्ति के त्यागिकय सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिबला बनिकय योग में स्थित कयल गेल कर्त्तव्य आ कर्म के करू, समत्व (जे किछु कर्म कयल जाय, ओकर पूर्ण हेबा आ नई हेबा में तथा ओकर फल में समभाव रहबाक नाम 'समत्व' छैक) मात्र योग कहबैत अछि ॥ 48 ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ 2-49 ॥

भावार्थः एहि समत्वरूपी बुद्धियोग सँ सकाम कर्म अत्यन्त निम्न श्रेणी के होइछ। ताहिलेल हे धनंजय! अहाँ समबुद्धिये में रक्षाक का उपाय ताकू अर्थात् बुद्धियोगेऽक आश्रय ग्रहण करऽकियेक तऽ फलऽक बनय बला बहुत दीन छथि ॥ 49 ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ 2-50 ॥

भावार्थ: समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दुनू के अही लोक में त्यागि दैत छथि अर्थात ओहि सँ मुक्त भय जाइत छथि। एहिसँ तू समत्व रूपी यू में लागि जाह, यैह समत्वरूपी योगे कर्म में कुशलता छैक अर्थात कर्मबंध सँ मुक्तिक उपाय छैक ॥ 50 ॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ 2-51 ॥

भावार्थ: कियेक तँ समबुद्धि सँ युक्त ज्ञानीजन कर्म सँ उत्पन्न होई बला फल के त्यागिकय जन्मरूपी बंधन सँ मुक्त भय निर्विकार परम पद के प्राप्त भऽजाइत छथि ॥ 51 ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ 2-52 ॥

भावार्थ: जाहि काल में अहाँक बुद्धि मोहरूपी दलदल के भलीभाँति पार कय जायत, ओहि समय में अहाँ सुनल गेल आओर सुनबा में आबय बला एहि लोक आओर परलोक सम्बन्धी सब भोग सँ वैराग्य के प्राप्त भऽ जयतैक ॥ 52 ॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ 2-53 ॥

भावार्थ: भाँति-भाँतिक वचन सभ के सुनला सँ विचलित भेल अहाँक बुद्धि जखन परमात्मा में अचल और स्थिर भऽ जायत, तखन अहाँके योग के प्राप्ति होयत अर्थात अहाँक परमात्मा सँ नित्य संयोग भऽ जायत ॥ 53 ॥

***

स्थिर बुद्धि पुरुष के लक्षण और ओकर महिमा

अर्जुन उवाच:

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ 2-54 ॥

भावार्थ: अर्जुन बजलाह- हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा के प्राप्त भेल स्थिरबुद्धि पुरुष के की लक्षण छैक? ओ स्थिरबुद्धि पुरुष केना बजैत अछि, केना बैसैत अछि आओर केना चलैत अछि ? ॥ 54 ॥

श्रीभगवानुवाच:

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्
आत्मयेवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ 2-55 ॥

भावार्थ: श्री भगवान् बजलाह- हे अर्जुन! जाहि काल में एही पुरुष मोन में सम्पूर्ण कामनाकेँ भलीभाँति त्यागि दैत छथि आओर आत्मा सँ आत्मे में संतुष्ट रहैत छथि, ओहि काल में ओ स्थितप्रज्ञ कहबैत छथि ॥55 ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ 2-56 ॥

भावार्थः दुःखक प्राप्ति भेला सँ जेकरा मोन में उद्वेग नहि होइत छनि, सुखक प्राप्ति में सर्वथा निःस्पृह अछि तथा जेकर राग, भय आओर क्रोध नष्ट भऽगेल छनि, एहन मुनि स्थिरबुद्धि कहाओल जाइत छथि ॥ 56 ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनंदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 2-57 ॥

भावार्थः जे पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित होथि ओह-ओहि शुभ या अशुभ के प्राप्त कय के ने प्रसन्न होइत छथि आओर ने द्वेष करैत छथि,हुंकार बुद्धि स्थिर छनि ॥ 57 ॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गनीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 2-58 ॥

भावार्थः जहिना कछुवा सब सभ दिससँ अपन अंग के समेट लेत अछि, ओहिना जखन पुरुष अपन इन्द्रियक सम्बन्ध सब तरहें अपन इन्द्रिय सँ हटा लैत अछि, तखन ओकर बुद्धि स्थिर छैक (अहाँके बुझबाक चाही) ॥ 58 ॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्टवा निवर्तते ॥ 2-59 ॥

भावार्थः इन्द्रिय द्वारा सम्बन्धकें ग्रहण नहि करय बला पुरुषो केवल सम्बन्ध सँ निवृत तँ भऽ जाइत छथि, लेकिन हुनका अंदर व्याप्त आसक्ति निवृत

नहि होइत अछि। एहन स्थितप्रज्ञ पुरुष के तँ आसक्तियो परमात्मा के साक्षात्कार कय निवृत होइत छनि ॥ 59 ॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ 2-60 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! आसक्ति के नाश नई होयबाक कारने ई प्रमथन स्वभाव बला इन्द्रिय सभ यत्न करैत बुद्धिमान पुरुषक मनोकें बलात् सेहो हरि लेत छैक ॥ 60 ॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 2-61 ॥

भावार्थः ताहिलेल साधक के चाही कि ओ ओहि सम्पूर्ण इन्द्रिय के वश में कयकऽ समाहित चित्त भऽहमर परायण भऽक ध्यान में बैसय कियेक तऽजाहि पुरुषक इन्द्रिय वश में होइत छैक,ओकरे बुद्धि स्थिर भऽ जाइत अछि ॥ 61 ॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ 2-62 ॥

भावार्थः विषयक चिन्तन करय बला पुरुष के ओहि विषय में आसक्ति भऽ जाइत छनि, आसक्ति सँ ओहि विषयक कामना उत्पन्न होइत अछि आओर कामना में विघ्न परला सँ क्रोध उत्पन्न होइत छैक ॥ 62 ॥

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ 2-63 ॥

भावार्थ: क्रोध सँ अत्यन्त मूढ़ भाव उत्पन्न होइत अछि, मूढ़ भाव सँ स्मृति में भ्रम उत्पन्न होइत छैक, स्मृति में भ्रम भेला सँ से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति के नाश भऽ जाइत छैक और बुद्धि के नाश भेला सँ यैह पुरुष अपन स्थिति सँ खसि जाइत छथि ॥ 63 ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ 2-64 ॥

भावार्थ: लेकिन अपना अधीन कयने अंतःकरण बला साधक अपन वश में कयल गेल, राग-द्वेष रहित इन्द्रियक द्वारा सम्बन्ध में विचरण करैत अपन अंतःकरण में प्रसन्नता के प्राप्ति बुझैत अछि ॥ 64 ॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ 2-65 ॥

भावार्थ: अन्तःकरण प्रसन्नता होयबा पर सम्पूर्ण दुःख खत्म भऽ जाइत अछि आओर ओहि प्रसन्नचित्त कर्मयोगी के बुद्धि शीघ्रहि सब दिससँ हटिकय एक परमात्मा जँका स्थिर भऽ जाइत अछि ॥ 65 ॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ 2-66 ॥

भावार्थ: नहि जीतल मोन और इन्द्रिय बला पुरुष में निस्चयात्मक बुद्धि नहि होइछ एवं ओहि अयुक्त मनुष्य के अंतःकरण भावना सेहो नहि होइछ

तथा भवनहीन मनुष्य के शांति नहि भेटैत अछि आओर शान्तिरहित मनुष्य के सुख केना भेटि सकैत छैक ? ॥ 66 ॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ 2-67 ॥

भावार्थ: किएक की जहिना जल में चलय बला नाव के वायु हरि लेत लैत छैक, तहिना सम्बन्ध में विचरैत इन्द्रिय में सँ मोन जाहि इन्द्रिय के संग रहैत अछि, वैह एकहि टा इन्द्रिय अहि अयुक्त पुरुषक बुद्धि के हरि लैत छैक ॥ 67 ॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 2-68 ॥

भावार्थ: ताहिलेल हे महाबाहो ! जाहि पुरुष के इन्द्रिय, इन्द्रियक सम्बन्ध में सब तरहें निग्रह कयने छथि, ओही पुरुषक बुद्धि स्थिर छैक ॥ 68 ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ 2-69 ॥

भावार्थ: सम्पूर्ण प्राणिक लेल जे रात्रि के सामान छैक, ओहि नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्द के प्राप्ति के लेल स्थितप्रज्ञ योगी जगैत छैक और जाहि नाशवान सांसारिक सुखक प्राप्ति के लेल सब प्राणी जागैत छथि; परमात्मा के तत्व के बुझय बला मुनि के लेल वैह रात्रि के सामान छैक ॥ 69 ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं- समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वेस शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ 2-70 ॥

भावार्थ: जहिना नाना प्रकारक नदीक जल सब तरह सँ परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठा बाला समुद्र में ओकरा विचलित नहि करैत ओहि में समा जाइत छैक, ओहिना सब भोग जाहि स्थितप्रज्ञ पुरुष में कोनो प्रकार के उत्पन्न

कयने बिना समा जाइत छैक, वैह पुरुष परम शांति के प्राप्त करैत छथि, भोग के चाहय बला नई ॥ 70 ॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ 2-71 ॥

भावार्थ: जे पुरुष सम्पूर्ण कामनाक त्याग कय ममतारहित, अहंकाररहित और स्पृहारहित विचरित करैत छथि, वैह शान्ति के प्राप्त करैत छथि ॥ 71 ॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ 2-72 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! एहि ब्रह्म के प्राप्त भेल पुरुषके स्थिति छैक, एकरा पाबियो कय योगी कखनो मोहित नहि होइत छथि और अंतकाल में सेहो एही ब्राह्मी स्थिति में स्थित भ' ब्रह्मानंद के प्राप्त करैत छथि ॥ 72 ॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ 2 ॥

***

अथ तृतीयोऽध्याय

कर्मयोग



ज्ञानयोग और कर्मयोग के अनुसार अनासक्त भाव सँ नियत कर्म करबाक आवश्यकता

अर्जुन उवाच:

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ 3-1 ॥

भावार्थ: अर्जुन बजलाह - हे जनार्दन! यदि अहाँ अपने कर्मक अपेक्षा ज्ञान के श्रेष्ठ मानैत छियैक तऽ फेर हे केशव! हमरा एहन भयंकर कर्म में कियेक लगबैत छी? ॥ 1 ॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ 3-2 ॥

भावार्थ: अपने सँ भेटल वचन मानू जे हमरा बुद्धि के मोहित कय रहल अछि। ताहिलेल ओहि एक बात के निश्चित कय कही जाहिसँ हमर कल्याण भऽ जाय ॥ 2 ॥

श्रीभगवानुवाच:

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ 3-3 ॥

भावार्थ: श्रीभगवान बजलाह- हे निष्पाप! एही लोक में दू प्रकारक निष्ठा (साधनक परिपक्क अवस्था अर्थात पराकाष्ठा के नाम 'निष्ठा' छैक।) हमरा द्वारा पहिनो कहल गेल अछि। ओहिमे सँ सांख्य योगिक निष्ठा तऽ ज्ञान योग सँ (माया सँ उत्पन्न भेल सम्पूर्ण गुणे टा गुण में बरतैत छथि, एहेन

बुझिकय तथा मोन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होइ बला सम्पूर्ण क्रिया में कर्तापन के अभिमान सँ रहित सर्वव्यापी सच्चिदानंदघन परमात्मा में एकीभाव सँ स्थित रहबाक नाम 'ज्ञान योग' छैक, एही के 'संन्यास', 'सांख्ययोग' आदि नाम कहल गेल छैक।) और योगिक निष्ठा कर्मयोग सँ (फल और आसक्ति के त्यागिकय भगवदाज्ञानुसार केवल भगवदर्थ समत्व बुद्धि सँ कर्म करबाक नाम 'निष्काम कर्मयोग' छैक, एही के 'समत्वयोग', 'बुद्धियोग', 'कर्मयोग', 'तदर्थकर्म', 'मदर्थकर्म', 'मत्कर्म' आदि नाम सँ कहल गेल छैक।) होइछ ॥ 3 ॥

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ 3-4 ॥

भावार्थ: मनुष्य ने तँ कर्म के शुरू कयने बिना निष्कर्मता (जाहि अवस्था में पुरुष के कर्म अकर्म भऽ जाइत छथि अर्थात फल उत्पन्न नहि के सकैछ, ओहि अवस्थाक नाम 'निष्कर्मता' छैक।) के यानी योगनिष्ठा के प्राप्त होइत अछि आ ने केवल क़र्मक त्यागमात्र सँ सिद्धि यानि सांख्यनिष्ठ के प्राप्त होइत छथि ॥ 4 ॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ 3-5 ॥

भावार्थ: निःसंदेह कियो मनुष्य कोनो काल में एकहु क्षण बिना कर्म के नई रहैछ कियेकि पूरा मनुष्य समुदाय के प्रकृति जनित गुण द्वारा परवश भेल कर्म करबाक लेल बाध्य कयल जाइत छनि ॥ 5 ॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ 3-6 ॥

भावार्थ: जे मूढ़ मनुष्य समस्त इन्द्रिय के हठपूर्वक ऊपर सँ रोकिकय मोनेमोन ओहि इन्द्रिय के विषय के चितन करैत रहैत छथि, ओ मिथ्याचारी अर्थात दम्भी कहाओल जाइत छथि ॥ 6 ॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ 3-7 ॥

भावार्थ: किन्तु हे अर्जुन! जे पुरुष मोन सँ इन्द्रिय के वश में कयकें अनासक्त भेल समस्त इन्द्रिय द्वारा कर्मयोगक आचरण करैत छथि, वैह श्रेष्ठ छथि ॥ 7 ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ 3-8 ॥

भावार्थ: अहाँ शास्त्रविहित कर्तव्यकर्म करू कियेक तऽ कर्म नई करबाक अपेक्षा कर्म करनाई श्रेष्ठ थिक तथा कर्म नहि कयला सँ अहाँक शरीर-निर्वाह सेहो सिद्ध नहि होयत ॥ 8 ॥

***

यज्ञादि कर्मक आवश्यकता तथा यज्ञक महिमा के वर्णन

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥ 3-9 ॥

भावार्थ: यज्ञ के निमित्त कयल जाय वाले कर्मक अलावा दोसरे काज में लागल मनुष्य समुदाय कर्म सँ बन्हाइत अछि। ताहिलेल

हे अर्जुन! अहाँ आसक्ति सँ रहित भऽ ओहि यज्ञ के निमित्ते खूब नीक सँ कर्तब्य कर्म करू ॥ 9 ॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्टा पुरोवाचप्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ 3-10 ॥

भावार्थः प्रजापति ब्रह्मा कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजा सब के रचिकय हुनका लोकनि के कहलथिन की अपने लोकनि एही यज्ञ द्वारा वृद्धि के प्राप्त करू आओर ई अपने लोकनि के इच्छित भोग प्रदान करय बला हुये ॥ 10 ॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ 3-11 ॥

भावार्थः अहाँ लोकनि एही यज्ञ द्वारा देवता सब के उन्नत करू आओर ओ देवता अपने लोकनि के उन्नत करथि। एही प्रकारे निःस्वार्थ भाव सँ एक दोसर के उन्नत करैत अपने लोकनि के परम कल्याणक प्राप्ति होयत
॥ 11 ॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ 3-12 ॥

भावार्थः यज्ञ द्वारा बढ़ायल गेल देवता अहाँ लोकनि के बिना मँगने इच्छित भोग निश्चिते दैत रहताह। एही प्रकारें ओहि देवता लोकनि द्वारा देल गेल भोग सब के जे पुरुष हुनका बिना देने स्वयं भोगैत छथि, ओ चोरे छथि
॥ 12 ॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ 3-13 ॥

भावार्थः यज्ञ सँ बचल अन्न के खाय बला श्रेष्ठ पुरुष सब पाप सँ मुक्त भऽ जाइत छथि और जे पापी आदमी अपन शरीर-पोषण करबाक लेल अन्न पकबैत छथि, ओ तऽ पापे के खाइत छथि ॥ 13 ॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ 3-14 ॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ 3-15 ॥

भावार्थः सम्पूर्ण प्राणी अन्न सँ उत्पन्न होइत छथि, अन्न के उत्पत्ति वृष्टि सँ होइत अछि, वृष्टि यज्ञ सँ और यज्ञ विहित कर्म सँ उत्पन्न होइ बला छैक। कर्मसमुदाय के अहाँ वेद सँ उत्पन्न और वेद के अविनाशी परमात्मा सँ उत्पन्न भेल बुझी। अहिसँ प्रमाणित होइछ जे सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा हरिदम यज्ञ में प्रतिष्ठित अछि ॥ 14-15 ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ 3-16 ॥

भावार्थः हे पार्थ! जे पुरुष एही लोक में एही प्रकारक परम्परा सँ प्रचलित सृष्टिचक्र के अनुकूल नहि चलैछ अर्थात अपन कर्तव्यक पालन नहीं करैछ, ओ इन्द्रिय द्वारा भोग में रमण करय बला पापी पुरुष व्यर्थे जीबैत अछि
॥ 16 ॥

* * *

ज्ञानवान और भगवान के लेल सेहो लोकसंग्रहार्थ कर्मक आवश्यकता

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ 3-17 ॥

भावार्थः परन्तु जे मनुष्य आत्मे में रमण करय बला और आत्मे में तृप्त आओर आत्मे में संतुष्ट होइथ,हुनका लेल कोनो कर्तव्य नहीं छनि ॥ 17 ॥

संजय उवाच:

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ 3-18 ॥

भावार्थः ओहि महापुरुष के एही विश्व में ने तऽ कर्म करबा सँ कोनो प्रयोजन रहैत छनि आ ने कर्म नई करबे सँ कोनो प्रयोजन रहैत छनि तथा सम्पूर्ण प्राणी मात्र में सेहो एकर किञ्चिन्मात्र स्वार्थक संबंध नहि रहैत छनि ॥ 18 ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः ॥ 3-19 ॥

भावार्थः ताहिलेल अहाँ निरन्तर आसक्ति सं रहित भ'कय हरिदम कर्तव्यकर्म के भलीभाँति करैत रहु कियेक तँ आसक्ति सँ रहित भऽ कयकर्म करैत मनुष्य परमात्मा के पबैत छथि ॥ 19 ॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ 3-20 ॥

भावार्थः जनकादि ज्ञानीजन सेहो आसक्ति रहित कर्मे द्वारा परम सिद्धि के भेल छलाह, ताहिलेल लोकसंग्रह के देखैत सेहो अहाँ कर्म करबाक योग्य अछि अर्थात अहाँक कर्म करनाइये उचित अछि ॥ 20 ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ 3-21 ॥

भावार्थः श्रेष्ठ पुरुष जे-जे आचरण करैत छथि, अन्य पुरुष सेहो ओहिना-ओहिना आचरण करैत छथि। ओ जे किछु प्रमाण करैत छथिन,समस्त मनुष्य-समुदाय ओहि के अनुसार बरतय लागि जाइत छथि (एतय क्रिया में एकवचन छैक, परन्तु 'लोक' शब्द समुदायवाचक भेल सँ भाषा में क्रिया बहुवचन लिखल गेल अहि) ॥ 21 ॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ 3-22 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! हमरा एही तीनो लोक में ने तऽ कोनो कर्तव्य अछि और ने कोनो प्राप्त करय योग्य वस्तु अप्राप्य अछि, तैयो हमहुँ कर्म करैत छी ॥ 22 ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ 3-23 ॥

भावार्थः किएक तँ हे पार्थ! यदि कदाचित् हम सावधान रहिकय कर्म नहि करू तऽ बहुत नुकसान होयत कियेकी मनुष्य सब प्रकारें हमरे मार्गक अनुसरण करैत अछि ॥ 23 ॥

यदि उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ 3-24 ॥

भावार्थ: ताहिलेल यदि हम कर्म नहि करू तऽ ई सबटा मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट भऽ जायत और हम संकरता के करय बला भऽ जाई तथा एही समस्त प्रजा के नष्ट करय बला बनी ॥ 24 ॥

* * *

अज्ञानी और ज्ञानवान के लक्षण तथा राग-द्वेष सँ रहित भऽकय कर्म करबाक लेल प्रेरणा

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ 3-25 ॥

भावार्थ: हे भारत! कर्म में आसक्त भेल अज्ञानीजन जाहि प्रकार कर्म करैत छथि, आसक्तिरहित विद्वान सेहो लोकसंग्रह करय चाहैत ओहि प्रकारे कर्म करथि ॥ 25 ॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ 3-26 ॥

भावार्थ: परमात्मा के स्वरूप में अटल स्थित रहैत ज्ञानी पुरुष के चाही के ओ शास्त्रविहित कर्म में आसक्ति बला अज्ञानिक बुद्धि में भ्रम अर्थात कर्म में अश्रद्धा उत्पन्न नहीं करथि, किन्तु स्वयं शास्त्रविहित समस्त कर्म भलीभाँति करैत हुनको लोकनि सँ ओहिना करबाबथि ॥ 26 ॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ 3-27 ॥

भावार्थ: वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार सँ प्रकृतिक गुण द्वारा कयल जाइत अछि, तखनो जेकर अन्तःकरण अहंकार सँ मोहित होइत रहैत अछि, एहन अज्ञानी 'हमही कर्ता छी' एहन मानैत छथि ॥ 27 ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ 3-28 ॥

भावार्थ: परन्तु हे महाबाहो! गुण विभाग और कर्म विभाग (त्रिगुणात्मक माया के कार्यरूप पाँच महाभूत और मन, बुद्धि, अहंकार तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और शब्दादि पाँच विषय- एही सबहक समुदायक नाम 'गुण विभाग' छैक और एहिके परस्पर चेष्टाआक नाम 'कर्म विभाग' छैक।) के तत्व (उपर्युक्त 'गुण विभाग' और 'कर्म विभाग' सँ आत्मा के पृथक अर्थात् निर्लेप बुझनाइये एकर तत्व के बुझनाइ छैक।) के बुझय बला ज्ञान योगी सम्पूर्ण गुण में बरैत रहल छथि, एहन बुझिकय ओहिमें आसक्त नहि होइत छथि ॥ 28 ॥

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ 3-29 ॥

भावार्थ: प्रकृति के गुण सँ अत्यन्त मोहित होइत मनुष्य गुण में और कर्म में आसक्त रहैत छथि, ओहिके पूर्णतया नई बुझय बला मन्दबुद्धि अज्ञानि लोकनि के ज्ञानी विचलित नहि करैछ ॥ 29 ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्नयस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ 3-30 ॥

भावार्थ: हमरा सन अन्तर्यामी परमात्मा में लागल चित्त द्वारा सम्पूर्ण कर्मकें हमरा में अर्पण करैत आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहित भऽ कय युद्ध करू ॥ 30 ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽति कर्मभिः ॥3-31 ॥

भावार्थ: जे कोनो मनुष्य दोषदृष्टि सँ रहित और श्रद्धायुक्त भऽकऽ हमर अहि मत के हरिदम अनुसरण करैत छथि, ओहो सम्पूर्ण कर्म सँ छुइट जाइत छथि ॥ 31 ॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ 3-32 ॥

भावार्थ: लेकिन जे मनुष्य हमरापर दोषारोपण करैत हमर एही मतऽक अनुसार नहि चलैत छथि, ओहि मुर्ख लोकनि के अहाँ सम्पूर्ण ज्ञानों में मोहित और नष्टे बुझू ॥ 32 ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रहः कि करिष्यति ॥ 3-33 ॥



भावार्थ: सभटा प्रकृति के प्राप्त होइत छथि अर्थात अपने स्वभाव के परवश होइत कर्म करैत छथि। ज्ञानवान् लोकनि सेहो अपन प्रकृति के अनुसार चेष्टा करैत छथि। फेर एही में ककरो हठ की करतैक ॥ 33 ॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ 3-34 ॥

भावार्थ: इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थ में अर्थात प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में राग और द्वेष छुपल रहैत अछि । मनुष्य के ओहि दुनू के वश में नहि होयबाक चाही कियेकी ओ दुनू टा कल्याण के मार्ग में विघ्न करय बला महान् शत्रु अछि ॥ 34 ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ 3-35 ॥

भावार्थ: बढियाँ जकाँ सँ आचरण में लाओल दोसर के धर्म सँ गुण रहित सेहो धर्म अति उत्तम अछि। अपन धर्म में तऽ मरनाइ सेहो कल्याणकारक अछि और दोसराक धर्म भय के दय बला होइछ ॥ 35 ॥

* * *

पाप के कारणभूत कामरूपी शत्रु के नष्ट करबाक उपदेश

अर्जुन उवाच:

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पुरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ 3-36 ॥

भावार्थ: अर्जुन बजलाह - हे कृष्ण! तखन तँ ई मनुष्य स्वयं नहियो चाहैत सेहो बलात् लगाकय कोना आओर केकरा सँ प्रेरित भऽकऽपाप के आचरण करैत छथि ॥ 36 ॥

श्रीभगवानुवाच:

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥ 3-37 ॥

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथि- रजोगुण सँ उत्पन्न भेल यैह काज क्रोध अछि । ई बहुत खाय बला अर्थात भोग सँ कखनो नई अघायबला आओर पापी लोक अछि। एकरा सेहो अहाँ एही विषय में शत्रु मानु ॥ 37 ॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ 3-38 ॥

भावार्थ: जाहि प्रकारें धुआँ सँ अग्नि आओर मैल सँ दर्पण ढाँकि जाइत अछि तथा जाहि प्रकारें जेर सँ गर्भ ढँकी जाइछ, व्हिना ओहि काज द्वारा ई ज्ञान ढंकल रहैछ ॥ 38 ॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ 3-39 ॥

भावार्थ: और हे अर्जुन! एहि अग्नि के समान कखनो नई पूर्ण होमय बला काम रूप ज्ञानि लोकनि के नित्य शत्रु द्वारा मनुष्य के ज्ञान ढँकल छनि ॥ 39 ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ 3-40 ॥

भावार्थ: इन्द्रिय, मन और बुद्धि- ई सब एकर वासस्थान कहल जाइछ । ई काज अहि मन, बुद्धि और इन्द्रिय द्वारा ही ज्ञान के आच्छादित कयकऽ जीवात्मा के मोहित करैछ ॥ 40 ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ 3-41 ॥

भावार्थ: ताहि लेल हे अर्जुन! अहाँ पहिने इन्द्रिय सब के वश में कयकऽएहि ज्ञान और विज्ञान के नाश करय बला महान पापी काम के अवश्ये बलपूर्वक मारि दियौक ॥ 41 ॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ 3-42 ॥

भावार्थ: इन्द्रिय सब के स्थूल शरीर सँ अलग यानी श्रेष्ठ, बलवान और सूक्ष्म

कहाइत अछि। एहि इन्द्रिय सब सँ मोन अलग अछि, मनो सँ अलग बुद्धि अछि आओर जे बिद्धियो सँ अत्यन्त अलग अछि वैह आत्मा अछि ॥ 42 ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ 3-43 ॥

भावार्थ: एहि प्रकारें बुद्धि सँ अलग अर्थात सूक्ष्म, बलवान और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्मा के बुझिकय आओर बुद्धि द्वारा मन के वश में कयकें महाबाहो! अहाँ एहि कामरूप दुर्जय शत्रु के मारि दियौक ॥ 43 ॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ 3 ॥

***

अथ चतुर्थोऽध्याय

ज्ञानकर्मसंन्यासयोग



योग परंपरा, भगवान के जन्म कर्म के दिव्यता, भक्त लक्षण भगवत्स्वरूप

श्री भगवानुवाचः

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ 4-1 ॥

भावार्थः श्री भगवान बजलाह - हम एहि अविनाशी योग के सूर्य सँ कहने रहियैन, सूर्य अपन पुत्र वैवस्वत मनु सँ कहलाह आओर मनु ओहि बात के अपन पुत्र राजा इक्ष्वाकु सँ ॥ 1 ॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥ 4-2 ॥

भावार्थः हे परन्तप अर्जुन! एहि प्रकारेण परम्परा सँ प्राप्त एहि योग के राजर्षि लोकनि बुझलाह, लेकिन ओकर बाद ओ योग बहुत काल सँ एहि पृथ्वी लोक में लुप्तप्राय भऽ गेल ॥ 2 ॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ 4-3 ॥

भावार्थः अहाँ हमर भक्त और प्रिय सखा छी, ताहि लेल एहि पुरातन योग के हम आई अहाँके कहलहुँ कियेक कि ई बहुत ही उत्तम रहस्य अछि अर्थात गुप्त रखबा योग्य विषय अछि ॥ 3 ॥

अर्जुन उवाचः

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।

कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ 4-4 ॥

भावार्थः अर्जुन बजलाह - अहाँक जन्म तऽ अर्वाचीन-एखन हालहि के अछि आओर सूर्यक जन्म तऽ बहुत पहिनेक छनि अर्थात कार्प के आरम्भ में भेल रहनि। तखन हम अहि बात के कोना मानू की अहि कार्प के आरम्भ में सूर्य सँ अहि योग के कहलियनि ? ॥ 4 ॥

श्रीभगवानुवाचः

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥ 4-5 ॥

भावार्थः श्री भगवान कहैत छथिन - हे परंतप अर्जुन! हमर आओर अहाँक बहुत बेर जन्म भऽ चुकल अछि ।ओहि सबकें अहाँ नहीं जनैत छी, लेकिन हम जनैत छी ॥ 5 ॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।

प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ 4-6 ॥

भावार्थः हम अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होइतहुँ तथा समस्त प्राणिक ईश्वर रहितहु अपन प्रकृति के अधीन कयकऽअपन योगमाया सँ प्रगट होइत छी ॥6 ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥ 4-7 ॥

भावार्थः हे भारत! जखन-जखन धर्मक हानि और अधर्म के वृद्धि होइत अछि, तखन-तखन हम अपन रूप के रचइत छी अर्थात साकार रूप में लोकक समक्ष प्रगट होइत छी ॥7 ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ 4-8 ॥

भावार्थः साधु पुरुषक उद्धार करबाक लेल, पाप कर्म करय बला के विनाश करबा लेल आओर धर्मक बढियाँ जकाँ स्थापना करबा लेल हम युग-युग में प्रगट होइत रहैत छी ॥ 8 ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः ।

त्यक्तवा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ 4-9 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! हमर जन्म आओर कर्म दिव्य अर्थात निर्मल आओर आओर अलौकिक अछि - एही प्रकारें जे मनुष्य तत्व सँ (सर्वशक्तिमान, सच्चिदानन्दन परमात्मा अज, अविनाशी और सर्वभूतक परम गति तथा परम आश्रय छथि, वैह केवल धर्म के स्थापित करबा आओर संसार के उद्धार करबाक लेल अपन योगमाया सँ सगुणरूप भऽ प्रकट होइत छथि। ताहि लेल परमेश्वर के समान सुहृद, प्रेमी और पतितपावन दोसर कियो नई अछि, एहेन बुझि जे पुरुष परमेश्वरक अनन्य प्रेम सँ निरन्तर चिन्तन करैत

आसक्तिरहित संसार में रहैत छथि, वैह हुनका तत्व सँ जनैत छथि।) बुझि जाइत छथि, ओ शरीर के त्यागि कय पुनः जन्म के प्राप्त नहि होइत छथि, लेकिन हमरा पबैत छथि ॥ 9 ॥

वीतरागभय क्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ 4-10 ॥

भावार्थः पहिनहु, जिनकर राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट भऽ गेल छलनि आओर जे हमरा में अनन्य प्रेमपूर्वक स्थित रहैत छलाह, एहन हमरा पर आश्रित रहय बला बहुत भक्त उपर्युक्त ज्ञान रूप तप सँ पवित्र भऽ कय हमर स्वरुप के पाबि चुकल छथि ॥10 ॥

ये यथा माँ प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ 4-11 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! जे भक्त हमरा जाहि तरहें भजईत छथि, हमहुँ हुनका ओहिना भजैत छियनि कियेकी सबटा मनुष्य सब तरहें हमरे मार्ग के अनुसरण करैत छथि ॥ 11 ॥

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥4-12 ॥

भावार्थः एहि मनुष्य लोक में कर्मक फल चाहय बला मनुष्य देवतागण के पूजन कयल करैत छथि कियेक तँ हुनका कर्म सँ उत्पन्न होइ बला सिद्धि

शीघ्र भेंट जाइत छनि ॥ 12 ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ 4-13 ॥

भावार्थः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- एहि चारु वर्णक समूह, गुण और कर्म के विभागपूर्वक हमरा द्वारा रचल गेल अछि। अई प्रकारें ओहि सृष्टि-रचनादि कर्म के कर्ता होयबा पर सेहो हमरा सन अविनाशी परमेश्वर के अहाँ वास्तव में अकर्ते बुझू ॥ 13 ॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ 4-14 ॥

भावार्थः कर्मक फल में हमर कोनो आकांक्षा नई अछि, जाहि कारण कर्म हमरा अपना में लिप्त नहि करैछ - अई प्रकारे जे हमरा तत्व सँ बुझी जाइत छथि, ओ सेहो कर्म सँ नहि बन्हाइत छथि ॥ 14 ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ 4-15 ॥

भावार्थः पूर्वकाल में मुमुक्षु लोकनि सेहो अहिना बुझिकय कर्म केलाह, अहिलेल अहुँ सेहो पूर्वज लोकनि द्वारा सदिखन करय बला कर्म के करू ॥ 15 ॥

* * *

कर्म-विकर्म एवं अकर्म के व्याख्या

कि कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ 4-16 ॥

भावार्थ: कर्म की छैक ? और अकर्म की छैक? एहि प्रकारें एकर निर्णय करबा में बुद्धिमान पुरुष सेहो मोहित भऽ जाइत छथि. ताहिलेल ओ कर्मतत्व हम अपनेके भलीभाँति बुझाकय कहब, जेकरा जानि अहाँ अशुभ सँ अर्थात कर्मबन्धन सँ मुक्त भऽ जायब ॥ 16 ॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ 4-17 ॥

भावार्थ: कर्म के स्वरूप के सेहो बुझबाक चाही आओर अकर्मक स्वरुप सेहो बुझबाक चाही तथा विकर्मक स्वरुप के सेहो बुझबाक चाही कियेक तऽकर्मक गति गहन अछि ॥ 17 ॥

कर्मण्य कर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ 4-18 ॥

भावार्थ: जे मनुष्य कर्म में अकर्म आओर जे अकर्म में कर्म देखैत छथि, ओ मनुष्य में बुद्धिमान छथि संगहि ओ योगी समस्त कर्म के करय बला छथि ॥ 18 ॥

***

कर्म में अकर्मता-भाव, नैराश्य-सुख, यज्ञ के व्याख्या

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पंडितं बुधाः ॥ 4-19 ॥

भावार्थ: जिनकर सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्म बिना कामना और संकल्प के होइत छनि तथा जिनकर समस्त कर्म ज्ञानरूप अग्नि द्वारा भस्म भऽगेल छनि, ओहि महापुरुष के ज्ञानीजन पंडित कहैत छथिन ॥ 19 ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः ॥ 4-20 ॥

भावार्थ: जे पुरुष समस्त कर्म में और ओकर फल में आसक्ति के सर्वथा त्याग कय संसार के आश्रय सँ रहित भऽ गेल अछि आओर परमात्मा में नित्य तृप्त छथि, ओ कर्म के भलीभाँति करितहुँ वास्तव में किछुओ नहि करैत छथि ॥ 20 ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्रोति किल्बिषम् ॥ 4-21 ॥

भावार्थ: जिनकर अंतःकरण और इन्द्रिय सहित शरीर जीतल छनि आओर जे लोकनि समस्त भोगक सामग्रीक परित्याग कय देने छथि, एहेन आशारहित पुरुष केवल शरीर-संबंधी कर्म करैत सेहो पापकें प्राप्त नई होइत छथि ॥ 21 ॥

यद्दच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ 4-22 ॥

भावार्थ: जे बिना इच्छा के अपने-आप प्राप्त भेल पदार्थसँ हरिदम संतुष्ट रहैत छथि, जिनका में ईर्ष्याक सर्वथा अभाव भऽ गेल होनि, जे हर्ष-शोक आदि द्वंद्व सब सँ सर्वथा अतीत भऽ गेल छथि - एहेन सिद्धि और असिद्धि में सम रहय बला कर्मयोगी कर्म करैत सेहो ओहि सँ नहि बन्हेता ॥ 22 ॥

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ 4-23 ॥

भावार्थ: जिनकर आसक्ति सर्वथा नष्ट भऽ गेल छनि, जे देहाभिमान और ममता सँ रहित भऽ गेल छथि, जिनकर चित्त निरन्तर परमात्मा के ज्ञान में स्थित रहैत छनि- एहेन खाली यज्ञसम्पादन के लेल कर्म करय बला मनुष्य के सम्पूर्ण कर्म भलीभाँति विलीन भऽ जाइत छनि ॥ 23 ॥

***

फलसहित विभिन्न यज्ञक वर्णन

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ 4-24 ॥

भावार्थ: जाहि यज्ञ में अर्पण अर्थात स्रुवा आदि सेहो ब्रह्म छथि और हवन करबाक योग्य द्रव्य सेहो ब्रह्म छथि तथा ब्रह्मरूप कर्ता द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि

में आहुति देनाई रूप क्रिया सेहो ब्रह्म छथि - ओहि ब्रह्मकर्म में स्थित रहय बला योगी द्वारा प्राप्त करय योग्य फल सेहो ब्रह्मे छथि ॥ 24 ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ 4-25 ॥

भावार्थ: दोसर योगीजन देवताक पूजनरूपी यज्ञक भलीभाँति अनुष्ठान कयल करैत छथि और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मारूप अग्नि में अभेद दर्शनरूप यज्ञक द्वारा आत्मरूप यज्ञ के हवन करैत छथि। (परब्रह्म परमात्मा में ज्ञान द्वारा एकीभाव सँ स्थित भेनाईये ही ब्रह्मरूपी अग्नि में यज्ञ द्वारा यज्ञक हवन करनाई छैक।) ॥ 25 ॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ 4-26 ॥

भावार्थ: अन्य योगीजन श्रोत्र आदि समस्त इन्द्रिय के संयमित रूप सँ अग्नि में हवन कयल करैत छथि आओर दोसर योगी लोकनि शब्दादि समस्त विषय के इन्द्रिय रूपी अग्नि में हवन कायल करैत छथि ॥ 26 ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ 4-27 ॥

भावार्थ: दोसर योगीजन इन्द्रियक सम्पूर्ण क्रियाओर प्राण के समस्त क्रियाक ज्ञान सँ प्रकाशित आत्म संयम योगरूपी अग्नि में हवन करैत छथि

(सच्चिदानंदघन परमात्मा के सिवाय अन्य किनको चिन्तन केनाईये ओहि सभक हवन केनाई अछि।) ॥ 27 ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ 4-28 ॥

भावार्थ: बहुतो पुरुष द्रव्य संबंधी यज्ञ कराय बला छथि, बहुतो तपस्या रूपी यज्ञ करय बला छथि तथा बहुतो योगरूपी यज्ञ करय बला छथि, बहुतो अहिसादि तीक्ष्णव्रतों सँ युक्त यत्नशील पुरुष स्वाध्यायरूपी ज्ञानयज्ञ करय बला छथि ॥ 28 ॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ 4-29 ॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ 4-30 ॥

भावार्थ: दोसर कतेको योगीजन अपान वायु में प्राणवायुक हवन करैत छथि, ओहिना अन्य योगीजन प्राणवायु में अपन वायुक हवन करैत छथि तथा अन्य कतेको नियमित आहार (गीता अध्याय 6 श्लोक 17 में देखी।) करय बला प्राणायाम परायण पुरुष प्राण और अपानक गति के रोकिकय प्राणक प्राणे में हवन कयल करैत छथि। ई सबटा साधक यज्ञ द्वारा पाप के कय देबा बला और यज्ञ के बुझय बला छथि ॥ 29-30 ॥



यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ 4-31 ॥

भावार्थ: हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ सँ बाँचल अमृतक अनुभव करय बला योगीजन सनातन परब्रह्म परमात्मा के प्राप्त होइत छथि और यज्ञ नई करय बला पुरुषक लेल तऽ ई मनुष्यलोक सेहो सुखदायक नई छनि, तखन परलोक केना सुखदायक भऽ सकैत छनि ? ॥ 31 ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ 4-32 ॥

भावार्थ: अहिना बहुतो आओर सेहो बहुत तरहक यज्ञ वेदक वाणी में विस्तार कहल गेल अछि । ओहि सबकें अहाँ मन, इन्द्रिय और शरीरक क्रिया द्वारा सम्पन्न होइ बला बुझी, एहि प्रकारें तत्व सँ बुझिकय हुंकार अनुष्ठान द्वारा अहाँ कर्म बंधन सँ सर्वथा मुक्त भऽ जायब ॥ 32 ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ 4-33 ॥

भावार्थ: हे परंतप अर्जुन! द्रव्यमय यज्ञक अपेक्षा ज्ञान यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ अछि तथा यावन्मात्र सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त भऽ जाइत अछि ॥ 33 ॥

***

ज्ञानक महिमा तथा अर्जुन के कर्म करबाक लेल प्रेरणा

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥ 4-34 ॥

भावार्थः ओहि ज्ञान के अहाँ तत्वदर्शी ज्ञानि जन लग जाकय बुझ्, हुनका भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम कयला सँ, हुनक सेवा कयला सँ आओर कपट छोड़िकय सरलतापूर्वक प्रश्न कयला सँ ओ परमात्म तत्व के भलीभाँति जननिहार ज्ञानी महात्मा अहाँकि ओहि तत्वज्ञान के उपदेश करताह ॥ 34 ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भुतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ 4-35 ॥

भावार्थः जेकरा बुझिकय पुनः अहाँ एही मोह में नहीं पड़ब तथा हे अर्जुन! जाहि ज्ञान द्वारा अहाँ सम्पूर्ण भूतक निःशेषभाव सँ पहिने अपना में (गीता अध्याय 6 श्लोक 29 देखी ।) और पाँछा हमरा सच्चिदानन्दघन परमात्मा में देखब। (गीता अध्याय 6 श्लोक 30 में देखी) ॥ 35 ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ 4-36 ॥

भावार्थः यदि अहाँ अन्य सब पापियो सँ सेहो अधिक पाप करय बला छी, तखन सेहो अहाँ ज्ञान रूपी नौका द्वारा निःसंदेह सम्पूर्ण पाप-समुद्र सँ भलीभाँति तरि जायब ॥ 36 ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ 4-37 ॥

भावार्थः कियेक तऽ हे अर्जुन! जेना प्रज्वलित अग्नि ईंधन के भस्ममय कय दैत अछि, ओहिना ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्म के भस्ममय कय दैत अछि ॥ 37 ॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ 4-38 ॥

भावार्थः एहि संसार में ज्ञान के समान पवित्र करय बला निःसंदेह किछुओ नई छैक । ओहि ज्ञान के कतेको समय सँ कर्मयोग द्वारा शुद्धान्तःकरण भेल मनुष्य अपने-आप आत्मा के पाबि लैत छथि ॥ 38 ॥

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ 4-39 ॥

भावार्थः जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान मनुष्य ज्ञान के प्राप्त होइत छथि तथा ज्ञान के पाबि कऽ ओ बिना विलम्ब के- तत्काले भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्ति के पाबि जाइत छथि ॥ 39 ॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ 4-40 ॥

भावार्थ: विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ सँ अवश्य भ्रष्ट भऽजाइत छथि। एहेन संशययुक्त मनुष्य के लेल ने ई छैक, ने परलोक है आ ने सुखे छैक ॥ 40 ॥

योगसन्नयस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥ 4-41 ॥

भावार्थ: हे धनंजय! जे कर्मयोगक विधि सँ समस्त कर्म के परमात्मा में अर्पण कय देने अछि आ जे विवेक द्वारा समस्त संशय के नाश कय देने अछि, एहने वश में कैल गेल अन्तःकरण बला पुरुष के कर्म नहि बन्हैत अछि ॥ 41 ॥

तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ 4-42 ॥

भावार्थ: ताहि लेल हे भरतवंशी अर्जुन! अहाँ हृदय में स्थित एही अज्ञानजनित अपन संशय के विवेकज्ञान रूपी तलवार द्वारा छेदन कय समत्वरूप कर्मयोग में स्थित भऽ जाउ आ युद्ध के लेल ठाढ़ होऊ ॥ 42 ॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यास योगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ 4 ॥

***

अथ पंचमोऽध्याय

कर्मसंन्यासयोग



ज्ञानयोग और कर्मयोगक एकता, सांख्य परक विवरण और कर्मयोगक वरीयता

अर्जुन उवाच:

सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ 5-1 ॥

भावार्थ: अर्जुन बजलाह - हे कृष्ण! अहाँ कर्म के संन्यास के आ पुनः कर्मयोगक प्रशंसा करैत छी । ताहि लेल अहि दुनू में सँ जे एकटा हमरा लेल भलीभाँति निश्चित कल्याणकारक साधन हो, से कहल जाओ ॥1॥

श्रीभगवानुवाच:

सन्न्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ 5-2 ॥

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथिन - कर्म संन्यास और कर्मयोग- ई दुनूटा परम कल्याण के करय बला अछि, परञ्च ओहि दुनू में सेहो कर्म संन्यास सं कर्मयोग साधन में सुगम भेला सँ श्रेष्ठ अछि ॥ 2 ॥

ज्ञेयः स नित्यसन्न्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ 5-3 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! जे पुरुष ने ककरो सँ द्वेष करैत अछि आ ने कोनो आकांक्षा करैत अछि, ओ कर्मयोगी हरिदम संन्यासीये बुझय योग्य अछि

कियेक तँ राग-द्वेषादि द्वंद्व सँ रहित पुरुष सुखपूर्वक संसार बंधन सँ मुक्त होइत अछि ॥ 3 ॥

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ 5-4 ॥

भावार्थ: उपरोक्त संन्यास और कर्मयोग के मूर्ख लोकनि पृथक्-पृथक् फल देबय बला कहैत अछि ने कि पण्डितजन, कियेक तँ दुनू में सँ एकोटा में सम्यक् प्रकार सँ स्थित पुरुष दुनू के फलरूप परमात्मा पबैत अछि ॥ 4 ॥

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ 5-5 ॥

भावार्थ: ज्ञान योगि द्वारा जे परमधाम प्राप्त कयल जाइत अछि, कर्मयोगि द्वारा सेहो वैह प्राप्त कयल जाइत अछि। ताहि लेल जे पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग के फलरूप में एक देखैत अछि, वैह यथार्थ देखैत अछि ॥ 5 ॥

सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ 5-6 ॥

भावार्थ: परन्तु हे अर्जुन! कर्मयोग के बिना संन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होइ बला सम्पूर्ण कर्म में कर्तापन के त्याग प्राप्त भेनाइ कठिन अछि और भगवत्स्वरूप के मनन करय बला कर्मयोगी परब्रह्म परमात्मा के शीघ्रहि पाबि लैत अछि ॥ 6 ॥

***

सांख्ययोगी और कर्मयोगी के लक्षण और ओकर महिमा

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ 5-7 ॥

भावार्थ: जिनकर मोन अपन वश में छनि, जे जितेन्द्रिय एवं विशुद्ध अन्तःकरण वाला छथि और सम्पूर्ण प्राणिक आत्मरूप परमात्माये जिनकर आत्मा छनि, एहेन कर्मयोगी कर्म करितहुँ लिप्त नई होइछ ॥ 7 ॥

नैव किचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित् ।
पश्यञ्श्रृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपंश्वसन् ॥ 5-8 ॥

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ 5-9 ॥

भावार्थ: तत्व के बुझय बला सांख्ययोगी तऽ देखैत, सुनैत, स्पर्श करैत, सूँघैत, भोजन करैत, गमन करैत, सुतैत, साँस लेत, बजैत, त्यागैत,ग्रहण करैत आ आँखि के खोलैत और मुनैतो, सब इन्द्रिय अपन-अपन अर्थ में कय रहल छथि- एही प्रकारेंबुझिकय निःसंदेह ई मानू की हम किछु नहि करैत छी ॥ 8-9 ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ 5-10 ॥

भावार्थ: जे पुरुष सब कर्म के परमात्मा में अर्पण कयकें और आसक्ति के त्यागी कय कर्म करैत अछि, ओ पुरुष जल सँ कमल के पातक भाँति पाप सँ लिप्त नहि होइत अछि ॥ 10 ॥

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संग त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ 5-11 ॥

भावार्थ: कर्मयोगी ममत्वबुद्धिरहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा सेहो आसक्ति के त्यागि कय अन्तःकरणक शुद्धि के लेल कर्म करैत छथि ॥ 11 ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ 5-12 ॥

भावार्थ: कर्मयोगी कर्मक फल के त्यागि कय भगवत्प्राप्ति रूपी शान्ति के प्राप्त होइत अछि और सकामपुरुष कामनाक प्रेरणा सँ फल में आसक्त भऽ बन्हाइत अछि ॥ 12 ॥

***

ज्ञानयोगक विषय

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ 5-13 ॥

भावार्थ: अन्तःकरण जिनका वश में अछि, एहेन सांख्य योगक आचरण करय बला पुरुष ने करैते आ ने करबाबिते नवद्वार बला शरीर रूपी घर में सब कर्म के मोन सँ त्यागिकय आनंदपूर्वक सच्चिदानंदघन परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहैत अछि ॥13 ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ 5-14 ॥

भावार्थ: परमेश्वर मनुष्य के ने तऽ कर्तापन के, ने कर्म के और ने कर्मफल के संयोगक रचना करैत अछि, किन्तु स्वभावे बरति रहल अछि ॥ 14 ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ 5-15 ॥

भावार्थ: सर्वव्यापी परमेश्वर सेहो ने ककरो पाप कर्म के और ने ककरो शुभकर्मे के ग्रहण करैत अछि, किन्तु अज्ञान द्वारा ज्ञान झँपायल अछि, ओहि सँ सब अज्ञानी मनुष्य मोहित भऽ रहल अछि ॥ 15 ॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।

तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ 5-16 ॥

भावार्थ: परन्तु जिनकर ओ अज्ञान परमात्मा के तत्व ज्ञान द्वारा नष्ट कय देल गेल अछि, हुंकार ओ ज्ञान सूर्य के सदृश ओहि सच्चिदानन्दघन परमात्मा के प्रकाशित कय दैत अछि ॥ 16 ॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ 5-17 ॥

भावार्थ: जिनकर मोन तद्रूप भऽरहल छनि, जिनकर बुद्धि तद्रूप भऽ रहल छनि और सच्चिदानन्दघन परमात्माये में जिनकर निरंतर एकीभाव सँ स्थिति अछि, एहेन तत्परायण पुरुष ज्ञान द्वारा पापरहित भऽ अपुनरावृत्ति के अर्थात परमगति के पबैत छथि ॥ 17 ॥

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ 5-18 ॥

भावार्थ: ओ ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुकुर और चाण्डाल में सेहो समदर्शीये (एकर विस्तार गीता अध्याय 6 श्लोक 32 के टिप्पणी में देखी।) होइत छथि ॥ 18 ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ 5-19 ॥

भावार्थ: जिनक मन समभाव में स्थित छनि, हुनका द्वारा एहि जीविते अवस्था में सम्पूर्ण संसार के जीत लेल गेल अछि कियेकी सच्चिदानन्दघन

परमात्मा निर्दोष और सम अछि, एहिसँ ओ सच्चिदानन्दघन परमात्माये में स्थित छथि ॥ 19 ॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥ 5-20 ॥

भावार्थ: जे पुरुष प्रिय के पाबि कय हर्षित नहीं होथि और अप्रिय के पाबि कय उद्विग्न नहि होथि, ओ स्थिरबुद्धि, संशयरहित, ब्रह्मवेत्ता पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा में एकीभाव सँ नित्य स्थित छथि ॥ 20 ॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ 5-21 ॥

भावार्थ: बाहर के विषय में आसक्तिरहित अन्तःकरण बला साधक आत्मा में स्थित जे ध्यानजनित सात्विक आनंद अछि, ओकरा पबैतअछि, तदनन्तर ओ सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के ध्यानरूपी योग में अभिन्न भाव सँ स्थित पुरुष अक्षय आनन्द के अनुभव करैत अछि ॥ 21 ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ 5-22 ॥

भावार्थ: जे अहि इन्द्रिय तथा विषय के संयोग सँ उत्पन्न होइ बला सब भोग छथि, यद्यपि विषयी पुरुष के सुखरूप भसैत छथि, तखनो दुःख के हेतु छथि और आदि-अन्तबला अर्थात अनित्य छथि। ताहिलेल हे अर्जुन! बुद्धिमान विवेकी पुरुष ओहिमे नहि रमैत छथि ॥ 22 ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ 5-23 ॥

भावार्थ: जे साधक अहि मनुष्य शरीर में, शरीर के नाश हेबा सँ पहिनेहे काम-क्रोध सँ उत्पन्न होइ बला वेग के सहन करबा में समर्थ भऽ जाइत अछि, वैह पुरुष योगी अछि और वैह सुखी अछि ॥ 23 ॥

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ 5-24 ॥

भावार्थ: जे पुरुष अन्तरात्माये में सुखबला अछि, आत्माये में रमण करय बला अछि तथा जे आत्माये में ज्ञान बला अछि, ओ सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के संग एकीभाव के प्राप्त सांख्य योगी शांत ब्रह्म के पबैत अछि ॥ 24 ॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ 5-25 ॥

भावार्थ: जिनकर सब पाप नष्ट भऽ गेल छनि, जिनकर सब संशय ज्ञान द्वारा निवृत्त भऽ गेल छनि, जे सम्पूर्ण प्राणिक हित में रत छथि और जिनकर जीतल मोन निश्चलभाव सँ परमात्मा में स्थित छनि, ओ ब्रह्मवेत्ता पुरुष शांत ब्रह्म के पबैत छथि ॥ 25 ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ 5-26 ॥

भावार्थ: काम-क्रोध सँ रहित, जीतल चित्तबला, परब्रह्म परमात्मा के साक्षात्कार कयल ज्ञानी पुरुषक लेल सब दिस सँ शांत परब्रह्म परमात्माये परिपूर्ण अछि ॥ 26 ॥

***

भक्ति सहित ध्यानयोग तथा भय, क्रोध, यज्ञ आदि के वर्णन

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ 5-27 ॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ 5-28 ॥

भावार्थ: बाहर के विषय-भोगक चिन्तन नहि करैत बाहरे निकालि कय और नेत्रक दृष्टि के भृकुटी के बीच में स्थित कयक तथा नासिका में विचरय बला प्राण और अपानवायु के सम कयकऽ, जिनकर इन्द्रिय सब मोन आ बुद्धि जीतल छथि, एहेन जे मोक्षपरायण मुनि (परमेश्वर के स्वरूपक निरन्तर मनन करय बला) इच्छा, भय और क्रोध सँ रहित भऽगेल अछि, ओहो सदा मुक्त अछि ॥ 27-28 ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ 5-29 ॥

भावार्थ: हमर भक्त हमरा सब यज्ञ और तप के भोगे बला, सम्पूर्ण लोकक ईश्वरक सेहो ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणिक सुहृद् अर्थात स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, एहेन तत्व सँ जानिकाय शान्ति के पबैत अछि ॥ 29 ॥

***

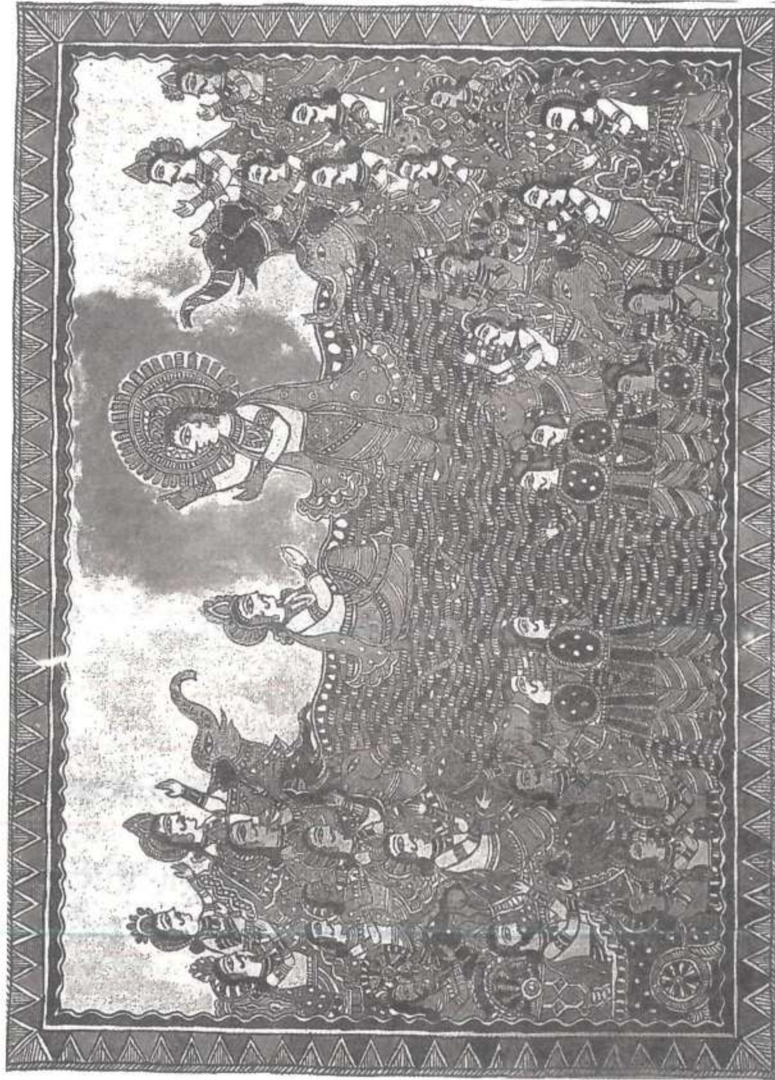
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्यायः ॥5 ॥

***



अथ षष्ठोऽध्याय

आत्मसंयमयोग



कर्मयोगक विषय और योगारूढ़ के लक्षण, काम-संकल्प-त्यागक महत्व

श्रीभगवानुवाचः

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ 6-1 ॥

भावार्थः श्री भगवान बजलाह - जे पुरुष कर्मफलक आश्रय नई लयकय करबा योग्य कर्म करैत अछि, ओ संन्यासी तथा योगी अछि आ खाली अग्नि के त्याग करय बला संन्यासी नहि अछि तथा खाली क्रियाक त्याग करय बला योगी नहि अछि ॥ 1 ॥

यं सन्न्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसन्न्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥ 6-2 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! जिनका संन्यास (गीता अध्याय 3 श्लोक 3 के देखी।) एना कहैत छथि, ओकरे अहाँ योग बुझू किये‌की संकल्पक त्याग नई करय बला कोनो पुरुष योगी नहि होइत अछि ॥ 2 ॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ 6-3 ॥

भावार्थः योग में आरूढ़ होय बला मननशील पुरुष के लेल योगक प्राप्ति में निष्काम भाव सँ कर्म करबाक हेतु कहल जाइत छैक और योगारूढ़ भऽ

गेला पर ओहि योगारूढ़ पुरुषक जे सर्वसंकल्पक अभाव अछि, वैह कल्याण में हेतु कहाओल जाइत अछि ॥ 3 ॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढ़स्तदोच्यते ॥ 6-4 ॥

भावार्थ: जाहि काल में ने तऽ इन्द्रियक भोग में और ने कर्म में आसक्त होइत अछि, ओहि काल में सर्वसंकल्पक त्यागी पुरुष योगारूढ़ कहाओल जाइत अछि ॥ 4 ॥

***

आत्म-उद्धार के प्रेरणा और भगवत्प्राप्त पुरुष के लक्षण एवं एकांत साधनाक महत्व

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ 6-5 ॥

भावार्थ: अपना द्वारा अपन संसार-समुद्र सँ उद्धार करय आ अपना के अधोगति में नई दियौक कियेकी ई मनुष्य आपहि तऽ अपन मित्र अछि आपहि अपन शत्रु अछि ॥ 5 ॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ 6-6 ॥

भावार्थ: जाहि जीवात्मा द्वारा मोन आ इन्द्रिय सहित देह जीतल गेल अछि, ओहि जीवात्मा के तँ ओ अपनहि मित्र अछि और जकरा द्वारा मोन तथा इन्द्रिय सहित देह नई जीतल गेल अछि, ओकरा लेल ओ अपनहि शत्रु के सदृश शत्रुता बरतैत अछि ॥ 6 ॥

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ 6-7 ॥

भावार्थ: सरदी-गरमी और सुख-दुःखादि में तथा मान और अपमान में जेकर अन्तःकरणक बृति भलीभाँति शांत छैन, एहेन स्वाधीन आत्माबला पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् प्रकार सँ स्थित अछि अर्थात ओकरा ज्ञान में परमात्मा के छोड़ि अन्य कोनो चीज छहिए नई ॥ 7 ॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ 6-8 ॥

भावार्थ: जिनकर अन्तःकरण ज्ञान-विज्ञान सँ तृप्त छनि, जिनकर स्थिति विकाररहित छनि, जिनकर इन्द्रिय भलीभाँति जीतल छनि आ जिनका लेल माँटि, पाथर और सुवर्ण समान छनि, ओ योगी युक्त अर्थात भगवत्प्राप्त छथि, एहेन कहल जाइत छैक ॥ 8 ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ 6-9 ॥

भावार्थ: सुहृद् (स्वार्थ रहित सबहक हित करय बला), मित्र, वैरी, उदासीन (पक्षपातरहित), मध्यस्थ (दुनू दिस के भलाई चाहय बला), द्वेष्य और बन्धुगण सब में, धर्मात्मा सब में और पापी लोकनि में सेहो समान भाव राखय बला अत्यन्त श्रेष्ठ छथि ॥ 9 ॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ 6-10 ॥

भावार्थ: मन और इन्द्रिय सहित शरीर के वश में राखय बला, आशारहित और संग्रहरहित योगी असगरे एकांत स्थान में स्थित भऽ कय आत्मा के निरंतर परमात्मा में लगाबय छथि ॥ 10 ॥

* * *

आसन विधि, परमात्माक ध्यान, योगी के चारु प्रकार

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ 6-11 ॥

भावार्थ: शुद्ध भूमि में, जाहिपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र ओछौल छैक, जे ने बहुत ऊँच अछि आ ने बहुत नीचाँ, एना अपन आसान के स्थिर कय स्थापित करी ॥ 11 ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ 6-12 ॥

भावार्थ: ओहि आसन पर बैसिकय चित्त और इन्द्रियक क्रिया सब के वश में रखैत मोन के एकाग्र कय अन्तःकरणक शुद्धि के लेल योगक अभ्यास करी ॥ 12 ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ 6-13 ॥

भावार्थ: काया, सिर और गला के समान एवं अचल धारण कय और स्थिर भऽ,अपन नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकय, अन्य दिशा सब के नई देखैत ॥13 ॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ 6-14 ॥

भावार्थ: ब्रह्मचारी के व्रत में स्थित, भयरहित तथा भलीभाँति शांत अन्तःकरण बला सावधान योगी मोन के रोकिकय हमरामें चित्त लगाकय और हमर परायण भऽ स्थित होइ ॥ 14 ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ 6-15 ॥

भावार्थ: वश में कयल गेल मोनबला योगी एही प्रकारे आत्मा के निरंतर हमरा परमेश्वर के स्वरूप में लगबैत हमरा में रहय बला परमानन्दक पराकाष्ठारूप शान्ति के पबैत अछि ॥ 15 ॥

* * *

विस्तार सँ ध्यान योगक विषय

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ 6-16 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन ! ई योग ने तऽ बहुत खाय बला के, ने बिलकुल नई खाय बला के, ने बहुत शयन करय के स्वभाव बला के आ ने सदिखन जागय बला के सिद्ध होइत अछि ॥16 ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ 6-17 ॥

भावार्थ: दुःखक नाश करय बला योग तँ यथायोग्य आहार-विहार करय बला के, कर्म में यथायोग्य चेष्टा बला के और यथायोग्य सुतय आओर जागय बला टा के सिद्ध होइत अछि ॥17 ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ 6-18 ॥

भावार्थ: अत्यन्त वश में कयल गेल चित्त जाहि काल में परमात्मा में भलीभाँति स्थित भऽ जाइत अछि, ओहि काल में सम्पूर्ण भोग सँ आकांक्षा रहित पुरुष योगयुक्त अछि, एहेन कहल जाइत छैक ॥ 18 ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ 6-19 ॥

भावार्थ: जाहि तरहें वायुरहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहि होइछ, ओहिना उपमा परमात्मा के ध्यान में लागल योगी के जीतल गेल चित्त के कहल गेल अछि ॥ 19 ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ 6-20 ॥

भावार्थ: योग के अभ्यास सँ निरुद्ध चित्त जाहि अवस्था में उपराम होइत अछि आ जाहि अवस्था में परमात्मा के ध्यान सं शुद्ध भेल सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा के साक्षात करैत सच्चिदानन्दघन परमात्मे में सन्तुष्ट रहैत अछि ॥20 ॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ 6-21 ॥

भावार्थ: इन्द्रिय सँ अतीत, खाली शुद्ध भेल सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करबा योग्य जे अनन्त आनन्द अछि, ओकरा जाहि अवस्था में अनुभव करैत अछि, और जाहि अवस्था में स्थित एहेन योगी परमात्मा के स्वरूप सँ विचलित होइते नहि अछि ॥21 ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ 6-22 ॥

भावार्थ: परमात्माक प्राप्ति रूप जेहन लाभ के प्राप्त कय ओकरा बेसी

दोसर किछुओ लाभ नहि मानैत आ परमात्मा प्राप्ति रूप अवस्था में स्थित योगी बहुत भारी दुःख सँ सेहो चलायमान नहि होइत अछि ॥ 22 ॥

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसञ्ज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ 6-23 ॥

भावार्थ: जे दुःखरूपी संसार के संयोग सँ रहित अछि तथा जेकर नाम योग अछि, ओकरा जनबाक चाही। ओ योग बिना अगुतेने हुए अर्थात धैर्य और उत्साहयुक्त चित्त सँ निश्चयपूर्वक करनाई कर्तव्य अछि ॥ 23 ॥

सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ 6-24 ॥

भावार्थ: संकल्प सँ उत्पन्न होय बला सम्पूर्ण कामना के निःशेष रूप सँ त्यागिकय और मोन द्वारा इन्द्रिय के समुदायक सब दिस सँ भलीभाँति रोकिकय करी ॥24 ॥

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥ 6-25 ॥

भावार्थ: धीरे-धीरे सँ अभ्यास करैत उपरति के पबैत तथा धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा मोन के परमात्मा में स्थित कयकऽ परमात्मा के सिवा और किछुओ चिन्तन नई करी ॥25 ॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ 6-26 ॥

भावार्थ: स्थिर नई रहय बला और चंचल मोन जाहि-जाहि शब्दादि विषय के निमित्त सँ संसार में विचरैत अछि, ताहि-ताहि विषय सँ रोकिकय माने हटाकय एकरा बेरि-बेरि परमात्मे में निरुद्ध करी ॥ 26 ॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ 6-27 ॥

भावार्थ: कियेकी जिनकर मोन बढियाँ जकाँ शांत छनि, जे पाप सँ रहित छथि और जिनकर रजोगुण शांत भऽ गेल छनि, एहने अहि सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के सँग एकीभाव भेल योगी के उत्तम आनंद भेटैत छनि ॥27 ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥6-28 ॥

भावार्थ: ओ पापरहित योगी अहि प्रकारें निरंतर आत्मा के परमात्मा में लगबैत सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्मा के प्राप्ति रूप अनन्त आनंद के अनुभव करैत अछि ॥28 ॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ 6-29 ॥

भावार्थः सर्वव्यापी अनंत चेतन में एकीभाव सं स्थिति रूप योग सं युक्त आत्मा बला तथा सब में समभाव सँ देखय बला योगी आत्मा के सम्पूर्ण भूत में स्थित और सम्पूर्ण भूत के आत्मा में कल्पित देखैत अछि ॥ 29 ॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ 6-30 ॥

भावार्थः जे पुरुष सम्पूर्ण भूत में सबके आत्मरूप हमरा वासुदेवे के व्यापक देखैत अछि सम्पूर्ण भूत के हमरा वासुदेवक अन्तर्गत (गीता अध्याय 9 श्लोक 6 के देखी।) देखैत अछि, ओकरा लेल हम अदृश्य नहि होइत छी और ओ हमरा लेल अदृश्य नहि होइत अछि ॥ 30 ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ 6-31 ॥

भावार्थः जे पुरुष एकीभाव में स्थित भऽ सम्पूर्ण भूत में आत्मरूप सँ स्थित हमरा सच्चिदानन्दघन वासुदेव के भजैत अछि, ओ योगी सब प्रकार सँ बरतैत सेहो हमरे में बरतैत अछि ॥31 ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ 6-32 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! जे योगी अपना जकाँ (जेना मनुष्य अपन मस्तक, हाथ, पैर और गुदादि के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र और म्लेच्छादिक सन के

बर्ताव करैत सेहो ओहिमें आत्मभाव अर्थात अपनापन समान हेबा सँ सुख और दुःख के समाने देखैत अछि, ओहिना सब भूत में देखनाई 'अपना जकाँ ' सम देखनाई अछि।) सम्पूर्ण भूत में सम देखैत अछि और सुख अथवा दुःख के सेहो सबमें सम देखैत अछि, ओ योगी परम श्रेष्ठ मानल गेल अछि ॥32 ॥

* * *

मन के निग्रहक विषय

अर्जुन उवाच:

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थिति स्थिराम् ॥ 6-33 ॥

भावार्थः अर्जुन बजलाह - हे मधुसूदन! अहि योग जाहि के अपने समभाव सँ कहलियैक, मोन के चंचल हेबा सँ हम एकर नित्य स्थिति के नहि देखैत छी ॥33 ॥

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ 6-34 ॥

भावार्थः कियेक तँ हे श्रीकृष्ण! ई मोन बहुत चंचल, प्रमथन स्वभाव बला, बहुत दृढ़ और बलवान अछि। ताहि कारण ओकरा वश में केनाई हम वायु के रोकब जकाँ अत्यन्त दुष्कर मानैत छी ॥ 34 ॥

श्रीभगवानुवाच:

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ 6-35 ॥

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथिन - हे महाबाहो! निःसंदेह मोन चंचल और बहुत कठिनता सँ वश में होबय बला अछि । लेकिन हे कुंतीपुत्र अर्जुन! ई अभ्यास (गीता अध्याय 12 श्लोक 9 के देखी।) और वैराग्य सँ वश में होइत अछि ॥ 35 ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥6-36 ॥

भावार्थ: जिनकर मोन वश में कयल नई अछि, एहेन पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य अछि और वश में कयल गेल मोन बला प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन सं ओकर प्राप्ति भेनाइ सहज अछि-ई हमर विचार अछि ॥ 36 ॥

***

योगभ्रष्ट पुरुष के गतिक विषय और ध्यानयोगीक महिमा

अर्जुन उवाच:

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ 6-37 ॥

भावार्थ: अर्जुन कहलखिन - हे श्रीकृष्ण! जे योग में श्रद्धा रखे बला अछि,

किन्तु संयमी नहि अछि, अही कारण जिनकर मोन अन्तकाल में योग सँ विचलित भऽ गेल अछि, एहेन साधक योगक सिद्धि के अर्थात भगवत्साक्षात्कार के नई प्राप्त भऽ कोन गति के पबैत अछि ॥ 37 ॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ 6-38 ॥

भावार्थ: हे महाबाहो! की ओ भगवत्प्राप्ति के मार्ग में मोहित और आश्रयरहित पुरुष छिन्न-भिन्न मेघक जँका दुनू दिस सँ भ्रष्ट भऽ नष्टो नहि भऽ जाइत अछि ॥38 ॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥ 6-39 ॥

भावार्थ: हे श्रीकृष्ण! हमरा अहि संशय के सम्पूर्ण रूप सँ समाधान करय के लेल अहि योग्य छी कियेक कि अहाँक अलावे क्यो दोसर एहि संशय के समाधान करय बला भेटनाई सम्भव नई अछि ॥ 39 ॥

श्रीभगवानुवाच:

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ 6-40 ॥

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथिन- हे पार्थ! ओहि पुरुष के ने तऽ अहि लोक में नाश होइत अछि आ ने परलोके में कियेक कि हे प्यारे! आत्मोद्धार

के लेल अर्थात भगवत्प्राप्ति के लेल कर्म करय बला कियो मनुष्य दुर्गति के नहि पबैत अछि ॥40 ॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ 6-41 ॥

भावार्थ: योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवान लोकनि के लोक सबहक अर्थात स्वर्गादि उत्तम लोकके पाबिकय ओहिमे बहुत वर्ष धरि निवास कय पुनः शुद्ध आचरण बला पुरुषक घर में जन्म लैत छथि ॥41 ॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ 6-42 ॥

भावार्थ: अथवा वैराग्यवान पुरुष ओहि लोक सब में न जाकय ज्ञानवान योगिये के कुल में जन्म लैत अछि, परन्तु एही प्रकारक जे ई जन्म अछि, से संसार में निःसंदेह अत्यन्त दुर्लभ अछि ॥ 42 ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ 6-43 ॥

भावार्थ: ओतय ओहि सँ पहिने शरीर में संग्रह कयल गेल बुद्धि-संयोग के अर्थात समबुद्धिरूप योग के संस्कार के अनायासे प्राप्त भऽ जाइत अछि आ हे कुरुनन्दन! ओकर प्रभाव सँ ओ पुनः परमात्माक सिद्धि के पयबाक लेल पहिनो सँ बढिकय प्रयत्न करैत अछि ॥ 43 ॥



पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥6-44॥

भावार्थ: ओ (एतय 'ओ ' शब्द सँ श्रीमान सबहक घर में जन्म लै बला योगभ्रष्ट पुरुष बुझबाक चाही) श्रीमान सबहक घर में जन्म लई बला योगभ्रष्ट पराधीन रहितो ओहि पहिने के अभ्यासे सँ निःसंदेह भगवान के दिस आकर्षित कयल जाइत अछि समबुद्धि रूपी योगक जिज्ञासु सेहो वेद में कहल गेल सकाम कर्म सब के फल के उल्लंघन कय जाइत अछि॥ 44॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो यात परां गतिम् ॥ 6-45॥

भावार्थ: परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करय बला योगी तँ पछिला अनेको जन्म के संस्कारबल सँ एही जन्म में संसिद्ध भऽ सम्पूर्ण पाप सँ रहित भऽ पुनः तत्काले परमगति के पाबि लैत अछि॥ 45॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ 6-46॥

भावार्थ: योगी तपस्वी सँ श्रेष्ठ छथि, शास्त्रज्ञानी सँ सेहो श्रेष्ठ मानल गेल अछि और सकाम कर्म करय बला सँ सेहो योगी श्रेष्ठ छथि। एहिसँ हे अर्जुन! अहाँ योगी छी॥46॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥6-47 ॥

भावार्थः सम्पूर्ण योगी में सँ सेहो जे श्रद्धावान योगी हमरा में लागल अन्तरात्मा सँ हमरा निरन्तर भजैत छथि, ओ योगी हमरा लेल परम श्रेष्ठ मान्य छथि ॥ 47 ॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ 6 ॥

***

अथ सप्तमोऽध्याय

ज्ञानविज्ञानयोग



विज्ञान सहित ज्ञानक विषय, इश्वरक व्यापकता

श्रीभगवानुवाच:

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ 7-1 ॥

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथि- हे पार्थ! जे अनन्य प्रेम सँ हमरा में आसक्त चित तथा अनन्य भाव सँ हमर परायण भऽ योग में लागल, जाहि तरहें अहाँ सम्पूर्ण विभूति, बल, ऐश्वर्यादि गुण सब सँ युक्त, सबहक आत्मरूप हमरा संशयरहित बुझताह, हुनका सुनि ॥ 1 ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ 7-2 ॥

भावार्थ: हम अहाँक लेल एही विज्ञान सहित तत्व ज्ञान के सम्पूर्णतया कहब, जेकरा बुझिकय संसार में पुनः और किछुओ बुझबाक योग्य शेष नहीं रहि जायत ॥ 2 ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये |
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ॥ 7-3 ॥

भावार्थ: हजारों मनुष्य में सँ कियो एकटा हमरा पाबय के यत्न आ ओहि यातना करय बला योगी सब में सँ सेहो कियो एकहि टा हमर परायण भऽहमरा तत्व अर्थात हमर यथार्थ रूप के जनैत अछि ॥ 3 ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ 7-4 ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृति विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ 7-5 ॥

भावार्थ: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार सेहो -एही प्रकार सँ हमर प्रकृति अई आठ तरह सँ विभाजित अछि। अहि आठ प्रकार के भेद बला तँ अपरा अर्थात हमर मूल प्रकृति अछि और हे महाबाहो! अहिसँ दोसर के, जाहिसँ ई सम्पूर्ण जगत धारण कयल जाइत अछि, हमर जीवरूपी परा अर्थात चेतन प्रकृति के बुझू ॥ 4-5 ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ 7-6 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! अहाँ एना बुझू कि सम्पूर्ण भूत अहि दुनू प्रकृतिये सँ उत्पन्न होई बला अछि और हम सम्पूर्ण जगत के प्रभव तथा प्रलय छी अर्थात् सम्पूर्ण जगतक मूल कारण छी ॥6 ॥

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ 7-7 ॥

भावार्थ: हे धनंजय! हमरा सँ अलग दोसर कोनो परम कारण नहि अछि है। अहि सम्पूर्ण जगत सूत्र में सूत्र के मणी के समान हमरा में गाँथल अछि ॥ 7 ॥

***

संपूर्ण पदार्थ में कारण रूप सँ भगवानक व्यापकता के कथन

श्रीभगवानुवाच:

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ 7-8 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! हम जल में रस छी, चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश छी, सम्पूर्ण वेद में ओंकार छी, आकाश में शब्द और पुरुष में पुरुषत्व छी ॥8 ॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ 7-9 ॥

भावार्थ: हम पृथ्वी में पवित्र (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध सँ एहि प्रसंग में एकर कारण रूप तन्मात्रा सभक ग्रहण अछि, एहि बात के स्पष्ट करबाक लेल हुनका संगे पवित्र शब्द जोड़ल गेल अछि) गंध और अग्नि में तेज छी तथा सम्पूर्ण भूत में हुनकर जीवन छी और तपस्वी लोकनि में तप छी ॥ 9 ॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ 7-10 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! अहाँ सम्पूर्ण भूत के सनातन बीज में हमरे बुझू। हम बुद्धिमानक बुद्धि तेजस्वीक तेज छी ॥ 10 ॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ 7-11 ॥

भावार्थ: हे भरतश्रेष्ठ! हम बलवानक आसक्ति और कामना सँ रहित बल अर्थात सामर्थ्य छी और सब भूत में धर्म के अनुकूल अर्थात शास्त्र के अनुकूल काम छी ॥11 ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्चये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ 7-12 ॥

भावार्थ: आओर जे सत्त्व गुण सँ उत्पन्न होबय बला भाव अछि और जे रजो गुण सँ होबय बला भाव अछि, ओहि सबके अहाँ 'हमरे सँ होबय बला अछि'एहेन बुझ्झ, लेकिन वास्तव में (गीता अ. 9 श्लोक 4-5 में देखी) हुनका में हम और हमरा में ओ नहीं अछि ॥ 12 ॥

* * *

आसुरी स्वभाव बलाक निंदा और भगवद्भक्तक प्रशंसा

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ 7-13 ॥

भावार्थ: गुणक कार्य रूप सात्त्विक, राजस और तामस- एही तीनू प्रकार के भाव सँ ई पूरा- प्राणिसमुदाय मोहित भऽ रहल अछि, ताहिलेल एही तीनू गुण सँ अलग हमरा सन अविनाशी नहि चिन्हैत छथि ॥ 13 ॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ 7-14 ॥

भावार्थ: कियेक कि ई अलौकिक अर्थात अति अद्भुत त्रिगुणमयी हमर माया बहुत दुस्तर अछि, लेकिन जे पुरुष निरन्तर खाली हमरे भजैत छथि, ओ एही माया के उल्लंघन कय जाइत छथि अर्थात संसार सं तरि जाइत छथि ॥ 14 ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ 7-15 ॥

भावार्थ: माया द्वारा जिनकर ज्ञान हरल जा चुकल छनि, एहेन आसुर-स्वभाव के धारण कयल गेल, मनुष्य में नीच, दूषित कर्म करय बला मूढ़ मनुष्य हमरा नहि भजैत छथि ॥ 15 ॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ 7-16 ॥

भावार्थ: हे भरतवंशी में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करय बला अर्थार्थी (सांसारिक वस्तु के भजय बला), आर्त (संकटनिवारण के लेल भजय बला), जिज्ञासु (हमरा यथार्थ रूप सँ बुझय के इक्षा सँ भजय बला) और ज्ञानी- एहेन चारि प्रकारक भक्तजन हमरा भजैत छथि ॥ 16 ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ 7-17 ॥

भावार्थः हुनका लोकनि में नित्य हमरा में एकीभाव सँ स्थित अनन्य प्रेमभक्ति बाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम अछि किएक कि हमरा तत्व सँ बुझय बला ज्ञानी के हम अत्यंत प्रिय छी आओर ओ ज्ञानी हमरा अत्यन्त प्रिय अछि ॥17 ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ 7-18 ॥

भावार्थः ई सब उदार छथि, परन्तु ज्ञानी तँ साक्षात् हमरे स्वरूप अछि- एहेन हमर मत अछि कियेक कि ओ मद्गत मोन-बुद्धिबला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप हमरे में बढियाँ जकाँ स्थित अछि ॥ 18 ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ 7-19 ॥

भावार्थः बहुतो जन्मक अंत के जन्म में तत्व ज्ञान के पुरुष, सब किछु वासुदेवे छथि- जे हमरा एहि प्रकारे भजैत अछि, ओ महात्मा अत्यन्त दुर्लभ अछि ॥19 ॥

* * *

अन्य देवताक उपासना और ओकर फल

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ 7-20 ॥

भावार्थः ओहि-ओहि भोगक कामना द्वारा जिनकर ज्ञान हेरायल गेल छनि, ओ आदमी अपने स्वभाव सँ प्रेरित भऽ ताहि-ताहि नियम के धारण कय अन्य देवता सबके भजैत छथि अर्थात पुजैत छथि ॥ 20 ॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ 7-21 ॥

भावार्थः जे-जे सकाम भक्त जाहि-जाहि देवताक स्वरूप के श्रद्धा सँ पूजय चाहैत अछि, ओहि-ओहि भक्तक श्रद्धा के हमें ओही देवता के प्रति स्थिर करैत छी ॥21 ॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥ 7-22 ॥

भावार्थः ओ पुरुष ओहि श्रद्धा सँ युक्त भऽ ओहि देवताक पूजन करैत अछि और ओहि देवता सँ हमरे द्वारा कयल गेल विधान सँ ओहि उन इच्छित भोग के निःसंदेह प्राप्त करैत अछि ॥ 22 ॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ 7-23 ॥

भावार्थः परन्तु एहेन अल्प बुद्धिवालक ओ फल नाशवान अछि तथा ओ देवता सब के पूजय बाला देवता के प्राप्त होइत छथि और हमर भक्त चाहे जहिना भजैथ, अंत में ओ हमरे पबैत छथि ॥ 23 ॥

***

भगवानक प्रभाव और स्वरूप के नहि बुझय बलाक निंदा और बुझय बलाक महिमा

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ 7-24 ॥

भावार्थः बुद्धिहीन पुरुष हमर अनुत्तम अविनाशी परम भाव के नहि बुझैत मोन-इन्द्रिय सँ अलग हमरा सच्चिदानन्दघन परमात्मा के मनुष्यक भाँति जनमिकय व्यक्ति भाव के भेटल मानैत छथि ॥ 24 ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ 7-25 ॥

भावार्थः अपन योगमाया सँ नुकायल हम सबहक सोझा नहि होइत छी, ताहिलेल ई अज्ञानी जनसमुदाय हमरा सन जन्मरहित अविनाशी परमेश्वर के नहि जनैत अछि अर्थात हमरा जन्मय-मरय बला बुझैत अछि ॥25 ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ 7-26 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! पूर्व में व्यतीत भेल और वर्तमान में स्थित तथा आगाँ होइ बला सभ भूत के हम जनैत छी, परन्तु हमरा कियो श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहि जनैत अछि ॥ 26 ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥ 7-27 ॥

भावार्थः हे भरतवंशी अर्जुन! संसार में इच्छा और द्वेष सँ उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वंद्वरूप मोह सँ सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञता के पाबि रहल छथि ॥27 ॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ 7-28 ॥

भावार्थः परन्तु निष्काम भाव सँ श्रेष्ठ कर्मक आचरण करय बला पुरुषक पाप नष्ट भऽ गेल अछि, ओ राग-द्वेषजनित द्वन्द्व रूपी मोह सँ मुक्त दृढ़निश्चयी भक्त हमरा सब प्रकार सँ भजैत छथि ॥ 28 ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ 7-29 ॥

भावार्थ: जे हमरा शरण में रहिकय जन्म और मरण सँ छुटबाक यत्न करैत छथि, ओ पुरुष ओहि ब्रह्म के, सम्पूर्ण अध्यात्म के, सम्पूर्ण कर्म के जनैत छथि ॥ 29 ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ 7-30 ॥

भावार्थ: जे पुरुष अधिभूत और अधिदैव सहित तथा अधियज्ञ सहित (सबहक आत्मरूप) हमरा अन्तो काल में जनैत छथि, ओ वे युक्तचित्त बला पुरुष हमरा जनीत छथि अर्थात हमरा पाबि लेत छथि ॥ 30 ॥

***

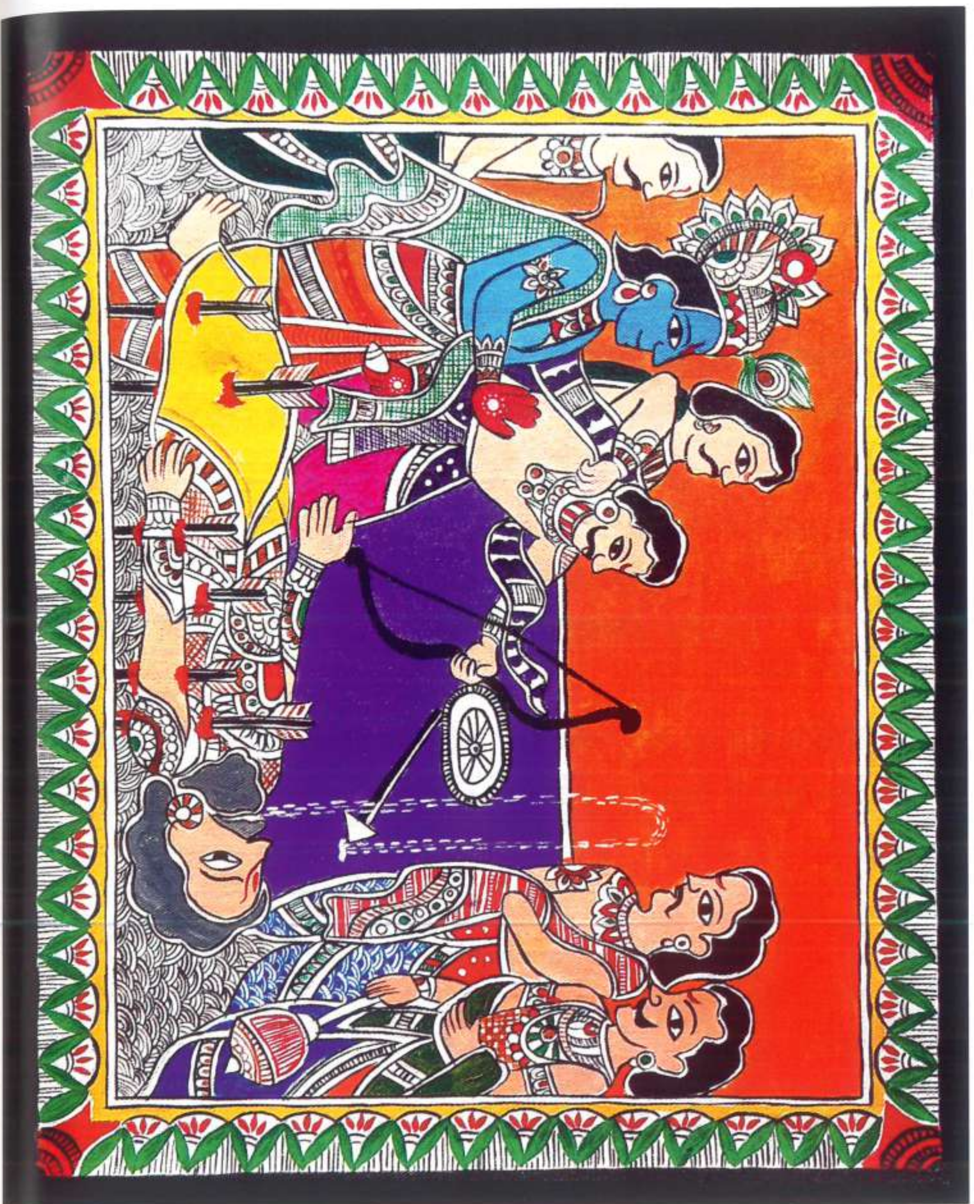
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ 7 ॥

***

अथाष्टमोऽध्याय

अक्षरब्रह्मयोग





ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिक विषय में अर्जुन के सात प्रश्न और ओकरउत्तर

अर्जुन उवाच:

कि तद्ब्रह्म किमध्यात्मं कि पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च कि प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ 8-1 ॥

भावार्थ: अर्जुन कहैत छथि- हे पुरुषोत्तम! ओ ब्रह्म की छैक? अध्यात्म की छैक? कर्म की छैक? अधिभूत नाम सँ की कहल गेल अछि और अधिदैव ककरा कहैत छैक ॥ 1 ॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ 8-2 ॥

भावार्थ: हे मधुसूदन! एहिठाम अधियज्ञ के छैक? और ओ अहि शरीर में कोना अछि? तथा युक्त चित्त बला पुरुष द्वारा अंत समय में अहाँ कोन तरहे बुझबा में अबैत छी ॥ 2 ॥

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ 8-3 ॥

भावार्थ: श्री भगवान कहलखिन- परम अक्षर 'ब्रह्म' अछि, अपन स्वरूप अर्थात जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम सँ कतय जाइत अछि तथा भूतक भाव के उत्पन्न करय बला जे त्याग अछि, वैह 'कर्म' के नाम सँ कहल गेल अछि ॥ 3 ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ 8-4 ॥

भावार्थ: उत्पत्ति-विनाश धर्म बला सब पदार्थ अधिभूत अछि, हिरण्यमय पुरुष (जेकर शाश्त्र में सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ, प्रजापति, ब्रह्मा इत्यादि नाम सँ कहल गेल अछि) अधिदैव अछि और हे देहधारी लोकनि में श्रेष्ठ अर्जुन! एहि शरीर में हम वासुदेवे अन्तर्यामी रूप सँ अधियज्ञ छी ॥ 4 ॥

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ 8-5 ॥

भावार्थ: जे पुरुष अंतो काल में हमरे स्मरण करैत शरीर के त्यागि कय जाइत अछि,ओ हमर साक्षात स्वरूप के पबैत अछि - एहिमे किछुओ संशय नहि अछि ॥5 ॥

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ 8-6 ॥

भावार्थ: हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! ई मनुष्य अंतो काल में जेहन-जेहन भाव के स्मरण करैत शरीर त्याग करैत अछि, ओहि-ओहि लोके के पबैत त अछि कियेक कि ओ सदिखन ओही भाव सँ भवित रहैत अछि ॥6 ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ 8-7 ॥

भावार्थ: ताहिलेल हे अर्जुन! अहाँ सब समय में निरंतर हमर स्मरण करी आओर युद्ध सेहो करू। एहि प्रकार हमरामे अर्पण कयल गेल मोन-बुद्धि सँ युक्त भऽ अहाँ निःसंदेह हमरे पाओत ॥ 7 ॥

* * *

भगवानक परम धाम और भक्ति के सोलह प्रकार

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ 8-8 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! ई नियम छैक जे परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूपी योग सँ युक्त, दोसर दिस नई जाय बला चित्त सँ निरंतर चितन करैत मनुष्य परम प्रकाश रूपी दिव्या पुरुष के अर्थात परमेश्वरे के पबैत अछि ॥ 8 ॥

कवि पुराणमनुशासितार-मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ 8-9 ॥

भावार्थ: जे पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबहक नियंता (अंतर्यामी रूप सँ सब प्राणी के शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार शासन करय बला) सूक्ष्मो सँ सेहो अति सूक्ष्म, सबहक धारण-पोषण करय बला अचिन्त्य-स्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाश रूप और अविद्या सँ अति अलग, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमेश्वर के स्मरण करैत अछि ॥9 ॥

प्रयाण काले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्-स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ 8-10 ॥

भावार्थ: ओ भक्ति युक्त पुरुष अन्तकाल में सेहो योगबल सँ भृकुटी के मध्य में प्राण के बढियाँ जकाँ सँ स्थापित कय, पुनः निश्चल मोन सँ स्मरण करैत ओहि दिव्या रूपी परम पुरुष परमात्मा के पबैत छथि ॥ 10 ॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ 8-11 ॥

भावार्थ: वेद के जानय बला विद्वान जाहि सच्चिदानन्दघनरूप परम पद के अविनाशी कहैत छथि, आसक्ति रहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन, जाहि में प्रवेश करैत छथि जाहि परम पद के चाहय बला ब्रह्मचारी लोकनि ब्रह्मचर्यक आचरण करैत छथि, ओही परम पद के हम अहाँक लेल संक्षेप में कहब ॥11 ॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ 8-12 ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ 8-13 ॥

भावार्थ: सब इंद्रिय के द्वारि सब के रोकिकय तथा मोन के हृद्देश में स्थिर कयकें, पुनः ओहि जीतल मोन द्वारा प्राण के मस्तक में स्थापित कय, परमात्म संबंधी योगधारणा में स्थित भऽ जे पुरुष 'ॐ' अहि एक अक्षर रूपी ब्रह्मक उच्चारण करैत और ओकर अर्थस्वरूप हमर निर्गुण ब्रह्मक

चितन करैत शरीर के त्यागिकय जाइत अछि, ओ पुरुष परम गति के पबैत अछि ॥ 12-13 ॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनीः ॥ 8-14 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! जे पुरुष हमरामे अनन्य-चित्त भऽ सदिखन निरंतर हमरा सन पुरुषोत्तमक स्मरण करैत अछि, ओहि नित्य-निरंतर हमरा में युक्त भेल योगी के लेल हम सुलभ की, अर्थात ओकरा सहजहि भेटि जाइत छी ॥14 ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धि परमां गताः ॥ 8-15 ॥

भावार्थ: परम सिद्धि के पाओल महात्माजन हमरा प्राप्त कय के दुःखक घर एवं क्षणभंगुर पुनर्जन्म नहि होइत छनि ॥15 ॥

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ 8-16 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यंत सब लोक पुनरावर्ती छथि, परन्तु हे कुन्तीपुत्र! हमरा पाबिकयपुनर्जन्म नई होइछ, किएक कि हम कालातीत छी और ई सब ब्रह्मादि के लोक काल द्वारा सीमित होबय सँ अनित्य छथि ॥16 ॥

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ 8-17 ॥

भावार्थ: ब्रह्माक जे एक दिन छनि, ओकरा एक हजार चतुर्युगी तक के अवधि बला और राति के सेहो एक हजार चतुर्युगी तक के अवधि बला जे पुरुष तत्व सँ जनैत छथि, ओ योगीजन कालक तत्व के जानय बला छथि ॥ 17 ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ 8-18 ॥

भावार्थ: संपूर्ण चराचर भूतगण ब्रह्माक दिन के प्रवेश काल में अव्यक्त सँ अर्थात ब्रह्माक सूक्ष्म शरीर सँ उत्पन्न होइत छथि और ब्रह्माक राति के प्रवेशकाल में ओहि अव्यक्त नामक ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीरे में लीन भऽ जाइत छथि ॥18 ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ 8-19 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! वैह एहि भूतसमुदाय उत्पन्न भऽ कय प्रकृति वश में भेल राति के प्रवेश काल में लीन होइत अछि और दिन के प्रवेश काल में पुनः उत्पन्न होइत अछि ॥ 19 ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ 8-20 ॥

भावार्थ: ओहि अव्यक्त सँ सेहो अत्यंत अलग दोसर अर्थात विलक्षण जे सनातन अव्यक्त भाव अछि, ओ परम दिव्य पुरुष सब भूत के नष्ट भेलो पर नष्ट नई होइछ ॥ 20 ॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ 8-21 ॥

भावार्थ: जे अव्यक्त 'अक्षर' एहि नाम सँ कहल गेल अछि, ओही अक्षर नामक अव्यक्त भाव के परमगति कहल जाइत अछि तथा जाहि सनातन अव्यक्त भाव के पाबिकय मनुष्य वापस नहि अबैत छथि, ओ हमर परम धाम अछि ॥ 21 ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ 8-22 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! जाहि परमात्मा के अंतर्गत सर्वभूत अछि और जाहि सच्चिदानन्दघन परमात्मा सँ ई समस्त जगत परिपूर्ण अछि (गीता अध्याय 9 श्लोक 4 के देखी), ओ सनातन अव्यक्त परम पुरुष तऽ अनन्य (गीता अध्याय 11 श्लोक 55 के देखी) भक्तिये सँ भेटबा योग्य अछि ॥ 22 ॥

***

शुक्ल और कृष्ण मार्ग के वर्णन

यत्र काले त्वनावत्तिमावृत्ति चैव योगिनः ।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ 8-23 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! जाहि काल में (एतय काल शब्द के मार्ग बुझी, कियेक कि आगाँ के श्लोक में भगवान एकर नाम 'सृति', 'गति' कहने छथि।) शरीर त्यागिकय गेल योगीजन तऽ वापस नई आबय बला गति के आओर जाहि काल में गेल आदमी वापसे नहि आबय बला गति के पबैत छथि, वही काल के अर्थात दुनू मार्ग के कहब ॥ 23 ॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥8-24॥

भावार्थ: जाहि मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि-अभिमानी देवता छथि, दिनऽक अभिमानी देवता छथि,शुक्ल पक्षक अभिमानी देवता छथि आओर उत्तरायणक छहो मासक अभिमानी देवता छथि, ओहि मार्ग में मरिकय गेल ब्रह्मवेत्ता योगीजन उपयुक्त देवता सबहक द्वारा क्रम सँ लय जा कय ब्रह्म के पबैत छथि। ॥8.24॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्ण षण्मासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ 8-25 ॥

भावार्थ: जाहि मार्ग में धूमाभिमानी देवता छथि, रात्रि अभिमानी देवता

छथि तथा कृष्ण पक्षक अभिमानी देवता छथि और दक्षिणायन के छहो मासक अभिमानी देवता छथि, ओहि मार्ग में मरिकय गेल सकाम कर्म करय बला योगी उपयुक्त देवता सबहक द्वारा क्रम सँ लय जायल गेल चंद्रमाक ज्योत के पाबि कय स्वर्ग में अपन शुभ कर्मक फल भोगिकय वापस आबि जाइत छथि ॥ 25 ॥

शुक्ल कृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्ति मन्ययावर्तते पुनः ॥ 8-26॥

भावार्थ: कियेक तँ एही जगत के दू टा प्रकार - शुक्ल और कृष्ण अर्थात देवयान और पितृयान मार्ग के सनातन मानल गेल अछि। एहिमे पहिल मार्ग द्वारा गेल (अर्थात अहि अध्याय के श्लोक 24 के अनुसार अर्चिमार्ग सँ गेल योगी।)-- जाहि सँ वापस नहि आबय परैत, ओहि परमगति के पबैत अछि और दोसर मार्ग द्वारा गेल (अर्थात अहि अध्याय के श्लोक 25 के अनुसार धूममार्ग सँ गेल सकाम कर्मयोगी) पुनः वापस अबैत अछि अर्थात् जन्म-मृत्यु के पबैत अछि ॥ 26 ॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ 8-27 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! एही प्रकारें दुनू मार्गक तत्व के बुझिकय कियो योगी मोहित नहि होइछ। एही हे अर्जुन! अहाँ सब काल में समबुद्धि रूप सँ योग सँ युक्त भऽ अर्थात निरंतर हमरा पयबाक लेल साधन करय बला छी ॥ 27 ॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येत तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ 8-28 ॥

भावार्थ: योगी पुरुष एहि रहस्य के तत्त्व सँ बुझिकाय वेद के पढ़बा में तथा यज्ञ, तप और दानादि के करबा में जेकरा पुण्यफल कहल गेल अछि, ओहि सबके निःसंदेह उल्लंघन कय जाइत अछि और सनातन परम पद के पबैत अछि ॥ 28 ॥

***

ॐ तत्सदिति श्री मद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्री कृष्णार्जुनसंवादे अक्षर ब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥8 ॥

***

अथ नवमोऽध्याय

राजविद्याराजगुह्ययोग



परम गोपनीय ज्ञानोपदेश, उपासनात्मक ज्ञान, ईश्वर के विस्तार

श्रीभगवानुवाच:

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ 9-1 ॥

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथि - अहाँ सन दोषदृष्टिरहित भक्त के लेल एहि सँ परम गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान के पुनः भली भाँति कहब, जेकरा बुझिकय अहाँ दुःखरूप संसार सँ मुक्त भऽ जायब ॥ 1 ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ 9-2 ॥

भावार्थ: ई विज्ञान सहित ज्ञान सब विद्याक राजा, सब गोपनीयक राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलबला, धर्मयुक्त, साधन करबा में बड़ा सुगम और अविनाशी अछि ॥2 ॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ 9-3 ॥

भावार्थ: हे परंतप! एहि उपयुक्त धर्म में श्रद्धारहित पुरुष हमरा नई प्राप्त भऽ मृत्युरूपी संसार चक्र में भ्रमण करैत रहैत छथि ॥ 3 ॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेषवस्थितः ॥ 9-4 ॥

भावार्थः हमरा सन निराकार परमात्मा सँ ई सब जगत् जल सँ बर्फ के सदृश परिपूर्ण अछि और सब भूत हमरा अंतर्गत संकल्प के आधार स्थित अछि, कितु वास्तव में हम हुनका में स्थित नहि छी ॥ 4 ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ 9-5 ॥

भावार्थः ओ सब भूत हमरा में स्थित नहि छथि, लेकिन हमर ईश्वरीय योगशक्ति के देखि कय भूत सबहक धारण-पोषण करय बला भूत सभ के उत्पन्न करय बला सेहो हमर आत्मा वास्तव में भूत सब में स्थित नहि अछि ॥5 ॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ 9-6 ॥

भावार्थः जहिना आकाश सँ उत्पन्न सर्वत्र विचरय बला महान् वायु सदिखन आकाशे में स्थित अछि, ओहिना हमर संकल्प द्वारा उत्पन्न भेला सँ संपूर्ण भूत हमरा में स्थित अछि, एहेन बुझू ॥ 6 ॥

* * *

जगतक उत्पत्ति के विषय

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ 9-7 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! कल्प सबहक अन्त में सब भूत हमर प्रकृति के पबैत छथि, अर्थात् प्रकृति में लीन होइत छथि और सब कल्पादि में हुनको हम पुनः रचइत छी ॥ 7 ॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ 9-8 ॥

भावार्थः अपन प्रकृति के अंगीकार कय स्वभावक बल सँ परतंत्र भेल एहि संपूर्ण भूतसमुदाय के बेर-बेर हुनक कर्मक अनुसार रचइत छी ॥8 ॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ 9-9 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! ओहि कर्म में आसक्तिरहित और उदासीन के सदृश (जेकर संपूर्ण कार्य कर्तृत्व भाव के बिना अपने आप सत्ता मात्रे होइत अछि ओकरे नाम 'उदासीन के सदृश' अछि) स्थित हमरा सन परमात्मा के ओ कर्म नहि बन्हैत अछि ॥ 9 ॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं ।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥9-10॥

भावार्थ: हे अर्जुन! हमरा सन अधिष्ठाता के सकाश सँ प्रकृति चराचर सहित सर्वजगत के रचइत अछि और एही कारणे ई संसारचक्र घुमि रहल अछि ॥10॥

***

भगवानक तिरस्कार करय बला आसुरी प्रकृति बलाक निंदा और दैव प्रकृति बलाक भगवद् भजनक प्रकार

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ 9-11 ॥

भावार्थ: हमर परमभाव के (गीता अध्याय 7 श्लोक 24 में देखी) नई बुझय बला मूढ़ लोक मनुष्यक शरीर धारण करय बला हमरा सन संपूर्ण भूतक महान् ईश्वर के तुच्छ बुझैत अछि अर्थात् अपन योग माया सँ संसार के उद्धार के लेल मनुष्य रूप में विचरण करैत हमरा सन परमेश्वर के साधारण मनुष्य मानैत छथि ॥11॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ 9-12 ॥



भावार्थ: ओ व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञान बला विक्षिप्तचित्त अज्ञानीजन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृतिये के(जेकरा आसुरी संपदाक नाम सँ विस्तारपूर्वक भगवान द्वारा गीता के अध्याय 16 श्लोक 4 तथा श्लोक 7 सँ 21 तक में कहल गेल अछि)धारण कयने रहैत छथि ॥12॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ 9-13 ॥

भावार्थ: परंतु हे कुन्तीपुत्र! दैवी प्रकृति के (एकर विस्तारपूर्वक वर्णन गीता अध्याय 16 श्लोक 1 से 3 तक में देखी) आश्रित महात्माजन हमरा सब भूतक सनातन कारण और नाशरहित अक्षरस्वरूप बुझिकय अनन्य मन सँ युक्त भऽ कय निरंतर भजैत छथि ॥13॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ 9-14 ॥

भावार्थ: ओ दृढ़ निश्चय बला भक्तजन निरंतर हमर नाम और गुणक कीर्तन करैत तथा हमरा पयबाक लेल यत्न करैत और हमरा बेरि -बेरि प्रणाम करैत सदिखन हमरे ध्यान में युक्त भऽ अनन्य प्रेम सँ हमर उपासना करैत छथि ॥14॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ते यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ 9-15 ॥

भावार्थ: एक तऽ ज्ञानयोगी जे हमरा सन निर्गुण-निराकार ब्रह्म के ज्ञानयज्ञ द्वारा अभिन्नभाव सँ पूजन करैतो हमर उपासना करैत छथि और दोसर मनुष्य बहुत प्रकार सँ स्थित हमरा सन विराट स्वरूप परमेश्वर के पृथक भाव सँ उपासना करैत छथि ॥ 15 ॥

***

सर्वात्म रूप से प्रभाव सहित भगवानक स्वरूप के वर्णन

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ 9-16 ॥

भावार्थ: क्रतु हम छी, यज्ञ हम छी, स्वधा हम छी, औषधि हम छी, मंत्र हम छी, घृत हम छी, अग्नि हम छी और हवनरूपी क्रियामें सेहो हमही छी ॥16 ॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥ 9-17 ॥

भावार्थ: एहि संपूर्ण जगतक धाता अर्थात् धारण करय बला आओर कर्मक फल दई बला,पिता, माता, पितामह, बुझय योग्य, (गीता अध्याय 13 श्लोक 12 सँ 17 तक में देखी) पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद में सेहो हमही छी ॥ 17 ॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ 9-18 ॥

भावार्थ: पयबाक योग्य परम धाम, भरण-पोषण करय बला, सबहक स्वामी, शुभाशुभ के देखय बला, सबहक वासस्थान, शरण लेबा, प्रत्युपकार नई चाहिकय हित करय बला, सबहक उत्पत्ति-प्रलयक हेतु, स्थिति के आधार, निधान (प्रलयकाल में संपूर्ण भूत सूक्ष्म रूप सँ जाहिमे लय होइत अछि ओकर नाम नाम 'निधान' अछि) और अविनाशी कारण में सेहो हमही छी ॥18 ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ 9-19 ॥

भावार्थ: हमही सूर्यरूप सँ तपैत छी, वर्षाक आकर्षण करैत छी आओर ओकरा बरसाबैत छी। हे अर्जुन! हमही अमृत और मृत्यु छी और सत्-असत् में सेहो हमही छी ॥ 19 ॥

***

सकाम और निष्काम उपासनाक फल

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापायज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गति प्रार्थयन्ते ।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ 9-20 ॥

भावार्थ: तीनू वेद में कयल गेल विधान, सकाम कर्म के करय बला, सोम रस के पिबय बला, पापरहित पुरुष (एतय स्वर्ग के पयबाक लेल प्रतिबंधक देव ऋणरूपी पाप सँ पवित्र भेनाइ बुझबाक चाहि) हमरा यज्ञक द्वारा पुजिकय स्वर्ग पाबय चाहैत छथि, ओ पुरुष अपन पुण्यक फलस्वरूप स्वर्गलोक के पाबि कय स्वर्ग में दिव्य देवता सबहक भोग भोगैत छथि ॥20 ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालंक्षीणे पुण्य मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ 9-21 ॥

भावार्थ: ओ ओहि विशाल स्वर्गलोक के भोगिकय पुण्य क्षीण हेबा पर मृत्यु लोक के पबैत छथि। एहि प्रकारे स्वर्ग के साधनरूपी तीनू वेद में कहल गेल सकामकर्मक आश्रय लई बला और भोगक कामना बला पुरुष बेर-बेर आवागमन के पबैत छथि, अर्थात् पुण्य के प्रभाव सँ स्वर्ग में जाइत छथि और पुण्य क्षीण हेबा मृत्युलोक में अबैत छथि ॥ 21 ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ 9-22 ॥

भावार्थ: जे अनन्यप्रेमी भक्तजन हमरा सन परमेश्वर के चितन करैत निष्कामभाव सँ भजैत छथि, ओहन नित्य-निरंतर हमर चितन करय बला पुरुष लोकनि के योगक्षेम (भगवत्स्वरूपक प्राप्ति के नाम 'योग' अछि और भगवत्प्राप्ति के निमित्त कयल गेल साधन के रक्षाक नाम 'क्षेम' अछि) हम स्वयं उपलब्ध करबा दैत छियनि ॥ 22 ॥

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ 9-23 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! यद्यपि श्रद्धा सँ युक्त जे सकाम भक्त दोसर देवता सबके पुजैत छथि, ओहो हमरे पुजैत छथि, कितु हुनकर ओ पूजन अविधिपूर्वक अर्थात् अज्ञानपूर्वक छनि ॥ 23 ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ 9-24 ॥

भावार्थ: कियेक तऽ संपूर्ण यज्ञक भोक्ता और स्वामी सेहो हमही छी, परंतु ओ हमरा सन परमेश्वर के तत्त्व सँ नहि जनैत छथि, एहि कारन ओ खसैत छथि अर्थात् पुनर्जन्म पबैत छथि ॥ 24 ॥

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥9-25 ॥

भावार्थ: देवता सभ के पूजय बला देवते के पबैत छथि, पितरक पूजन करय बला पितर के पबैत छथि, भूतक पूजन करय बला भूते के पबैत छथि और हमर पूजन करय बला भक्त हमरे पबैत छथि। ताहिलेल हमर भक्त सबके पुनर्जन्म नहि होइत छनि (गीता अध्याय 8 श्लोक 16 में देखी) ॥25 ॥

* * *

निष्काम भगवद् भक्तिक महिमा

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥9-26॥

भावार्थ: जे कियो भक्त हमरा लेल प्रेम सँ पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करैत छथि, ओहि शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त के प्रेमपूर्वक अर्पण कयल गेल वैह पत्र-पुष्पादि हम सगुणरूप सँ प्रकट भऽ प्रीतिसहित खाइत छी॥26॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥9-27॥

भावार्थ: हे अर्जुन! अहाँ जे कर्म करैत छी, जे खाइत छी, जे हवन करैत छी, जे दान दैत छी और जे तप करैत छी, ओ सबटा हमरा अर्पण करू॥27॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्य से कर्मबंधनैः ।
सन्न्यासयोगमुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥9-28॥

भावार्थ: एहि प्रकारे, जाहिमे समस्त कर्म हमरा सन भगवान के अर्पण करैत छथि-एहेन संन्यासयोग सँ युक्त चित्तवाला यहां शुभाशुभ फलरूपी कर्मबंधन सँ मुक्त भऽजायब और ओहिसँ मुक्त भऽ कय हमरे पाबि लेब ॥28॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥9-29॥

भावार्थ: हम सब भूतादि में समभाव सँ व्याप्त छी, ने कियो हमर अप्रिय अछि आ ने प्रिय अछि, परंतु जे भक्त हमरा प्रेम सँ भजैत छथि, ओ हमरा में छथि और हमहुँ हुनका में प्रत्यक्ष प्रकट (जहिना सूक्ष्म रूप सँ सब जगह व्यापक होइतो अग्नि साधन द्वारा प्रकट करबे सँ प्रत्यक्ष होइत अछि, ओहिना सब जगह स्थित भेलाक बादो परमेश्वर के भक्ति सँ भजय बले के अंतःकरण में प्रत्यक्ष रूप सँ प्रकट होइत अछि) छी॥29॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥9-30॥

भावार्थ: यदि कियो अतिशय दुराचारी सेहो अनन्य भाव सँ हमर भक्त बनि कय हमरा भजैत अछि तैयो ओ साधुये मानय योग्य अछि, कियेक की ओ यथार्थ निश्चय बला अछि। अर्थात् ओ ई भली भाँति निश्चय कय लेलक अछि जे परमेश्वर के भजन के समान किछु आओर नहि अछि॥30॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥9-31॥

भावार्थ: ओ जल्दिये धर्मात्मा बनि जाइत अछि और सदिखन रहय बला परम शान्ति के पबैत अछि। हे अर्जुन! अहाँ निश्चयपूर्वक ई सत्य बुझू जे हमर भक्त नष्ट नहि होइत अछि॥31॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥9-32॥

भावार्थ: हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि चाण्डालादि जे कियो होइथ, ओहो हमर शरणागत भऽ परमगति के पबैत छथि॥32॥

कि पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥9-33॥

भावार्थ: पुनः एहिमे कहबाके की अछि, जे पुण्यशील ब्राह्मण छलाह राजर्षि भक्तजन हमर शरणागत भऽ परम गति के पबैत छथि। ताहिलेल अहाँ सुखरहित और क्षणभंगुर एहि मनुष्य शरीर के प्राप्त कय निरंतर हमरे भजन करू॥33॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥9-34॥

भावार्थ: हमरा में मोन लगबय बला बनू, हमर भक्त बनू, हमर पूजन करय बला होऊ, हमरा प्रणाम करू। एहि प्रकारे आत्मा के हमरा में नियुक्त कय हमर परायण बनि अहाँ हमरे पायब ॥34॥

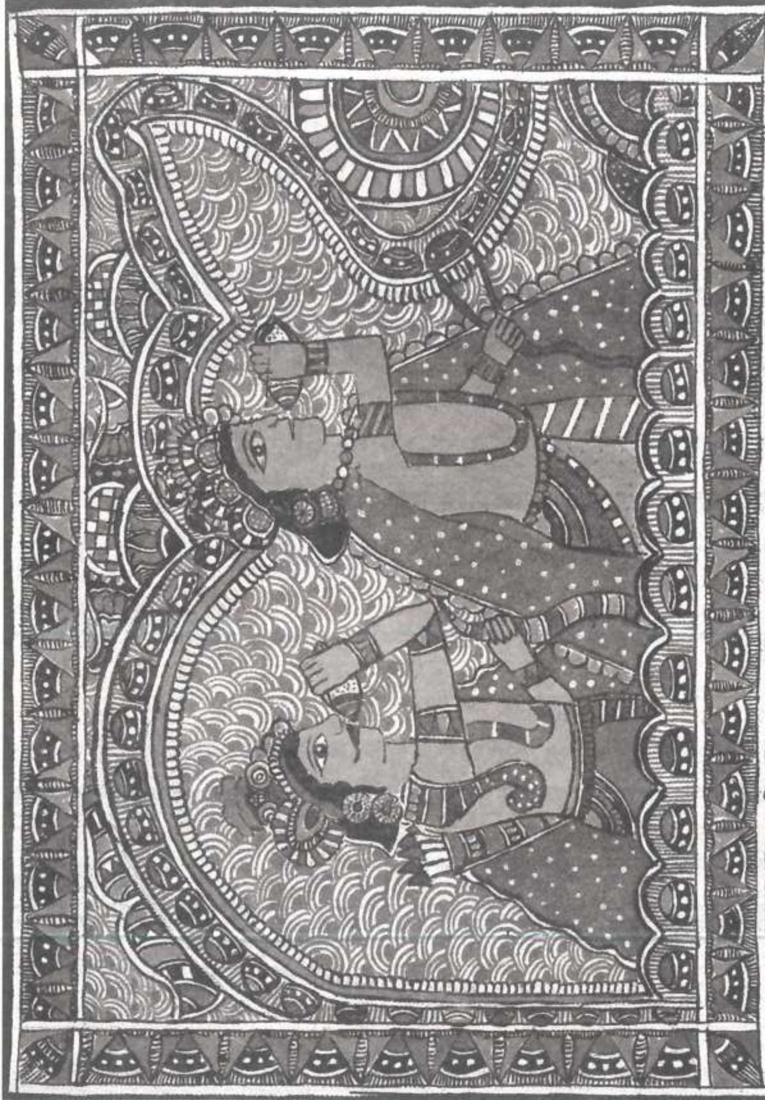
***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्री कृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥9॥

***

अथ दशमोऽध्याय

विभूतियोग



भगवानक विभूति और योगशक्तिक कथन तथा हुनका बुझबाक फल

श्रीभगवानुवाच:

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः ।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥10-1 ॥

भावार्थ: श्री भगवान् बजलाह- हे महाबाहो! तैयो हमर परम रहस्य और प्रभावयुक्त वचन के सुनु, जेकरा हम अहाँके अतिशय परमे करय बला के हितक इक्षा सँ कहब ॥1 ॥

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥10-2 ॥

भावार्थ: हमर उत्पत्ति अर्थात् लीला सँ प्रगट होइ के ने देवता सब जनैत छथि आ ने महर्षियेगन जनैत छथि, कियेक तऽहम सब तरहक देवता आ महर्षि लोकनि के सेहो आदिकारण छी ॥ 2 ॥

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ 10-3 ॥

भावार्थ: जे हमरा अजन्मल अर्थात् वास्तव में जन्मरहित, अनादि (अनादि ओकरा कहल जाइत छैक जे आदि रहित हो एवं सबहक कारण हो) और

लोक के महान् ईश्वर तत्त्व सँ जनैत अछि, वैह मनुष्य में ज्ञानवान् पुरुष संपूर्ण पाप सँ मुक्त भऽ जाइत अछि ॥ 3 ॥

बुद्धिर्ज्ञानमसम्मोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च ॥ 10-4 ॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ 10-5 ॥

भावार्थ: निश्चय करबाक शक्ति, यथार्थ ज्ञान, असम्मूढ़ता, क्षमा, सत्य, इंद्रिय के वश में केनाइ, मनक निग्रह तथा सुख-दुःख, उत्पत्ति-प्रलय और भय-अभय तथा अहिंसा, समता, संतोष तप (स्वधर्मक आचरण सँ इंद्रियादि केतपाकय शुद्ध करबाक नाम तप अछि), दान, कीर्ति और अपकीर्ति- एहेन अहि प्राणि के नाना प्रकारक भाव हमरे सँ होइत अछि ॥4-5 ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ 10-6 ॥

भावार्थ: सात महर्षिजन, चारि टा ओहियो सँ पहिने होमय बला सनकादि तथा स्वायम्भुव आदि चौदह मनु- ई हमरा में भाव बला सब-के-सब हमरे संकल्प सँ उत्पन्न भेल अछि, जिनकर संसार में ई सम्पूर्ण प्रजा अछि ॥6 ॥

एतां विभूति योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ 10-7 ॥

भावार्थ: जे पुरुष हमर अहि परमैश्वर्यरूप विभूति और योगशक्ति के तत्त्व सँ जनैत अछि (जे किछु दृश्यमात्र संसार अछि वैह सब भगवानक माया अछि और एकटा वासुदेवे भगवान सर्वत्र परिपूर्ण अछि, यैह बुझनाई तत्व के बुझनाई अछि), ओ निश्चल भक्तियोग सँ युक्त भऽ जाइत अछि- एहिमे लेश मात्र संशय नहि अछि ॥ 7 ॥

***

फल और प्रभाव सहित भक्तियोगक वर्णन

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ 10-8 ॥

भावार्थ: हम वासुदेव संपूर्ण जगत्‌क उत्पत्ति के कारण छी और सम्पूर्ण जगत् हमरे सँ चलैत अछि, एहि प्रकारे बुझिकय श्रद्धा और भक्ति सँ युक्त बुद्धिमान् भक्तगन हमरे सन परमेश्वर के निरंतर भजैत अछि ॥ 8 ॥

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ 10-9 ॥

भावार्थ: निरंतर हमरे में मोन लगबय बला और हमरे में अपन प्राण के अर्पण करय बला (एहि वासुदेवे के लेल जे अपन जीवन अर्पण केलाह

हुनके नाम मद्गतप्राणाः छनि) भक्तगण हमर भक्तिक चर्चा द्वारा आपस में हमर प्रभाव के बुझैत तथा गुण और प्रभाव सहित हमरे कथन करैत निरंतर संतुष्ट होइत छथि और हमरे अर्थात वासुदेवे में रमण करैत छथि ॥9॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ 10-10 ॥

भावार्थ: ओ निरंतर हमरा ध्यान में लागल और प्रेमपूर्वक भजय बला भक्तगण के हम तत्त्वज्ञानरूपी योग दैत छियनि, जाहि सँ ओ हमरे पबैत छथि ॥10॥

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ 10-11 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! हुनका ऊपर अनुग्रह करबा लेल हुनक अंतःकरण में स्थित भेल हम स्वयं हुकनर अज्ञानजनित अन्हार के प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूपी दीप के द्वारा नष्ट कय दैत छियैक ॥11॥

***

अर्जुन द्वारा भगवानक स्तुति तथा विभूति और योगशक्ति के कहबाक लेल प्रार्थना

अर्जुन उवाच:

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ 10-12 ॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥10-13 ॥

भावार्थ: अर्जुन कहैत छथिन - अपने परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र थिकहुँ, कियेक तऽ अहाँके सब ऋषिगण सनातन, दिव्य पुरुष एवं देवता लोकनि के सेहो आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहैत छियनि। ओहिना देवर्षि नारद तथा असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास सेहो कहैत छथि और अहुँ हमरा प्रति कहैत छी ॥13॥

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥10-14 ॥

भावार्थ: हे केशव! जैह किछु अपने हमरा प्रति कहैत छी, हम सबटा के सत्य मानैत छी। हे भगवन्! अहाँक लीलामयी (गीता अध्याय 4 श्लोक 6 देखल जाओ) स्वरूप के ने तऽ दानवे जनैत अछि आ ने देवते ॥ 14 ॥

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥10-15॥

भावार्थ: हे भूत के उत्पन्न करय बला! हे भूतक ईश्वर! हे देवक देव! हे जगत् के स्वामी! हे पुरुषोत्तम! अहाँ स्वयम अपने सँ अपना के जनैत छी॥15॥

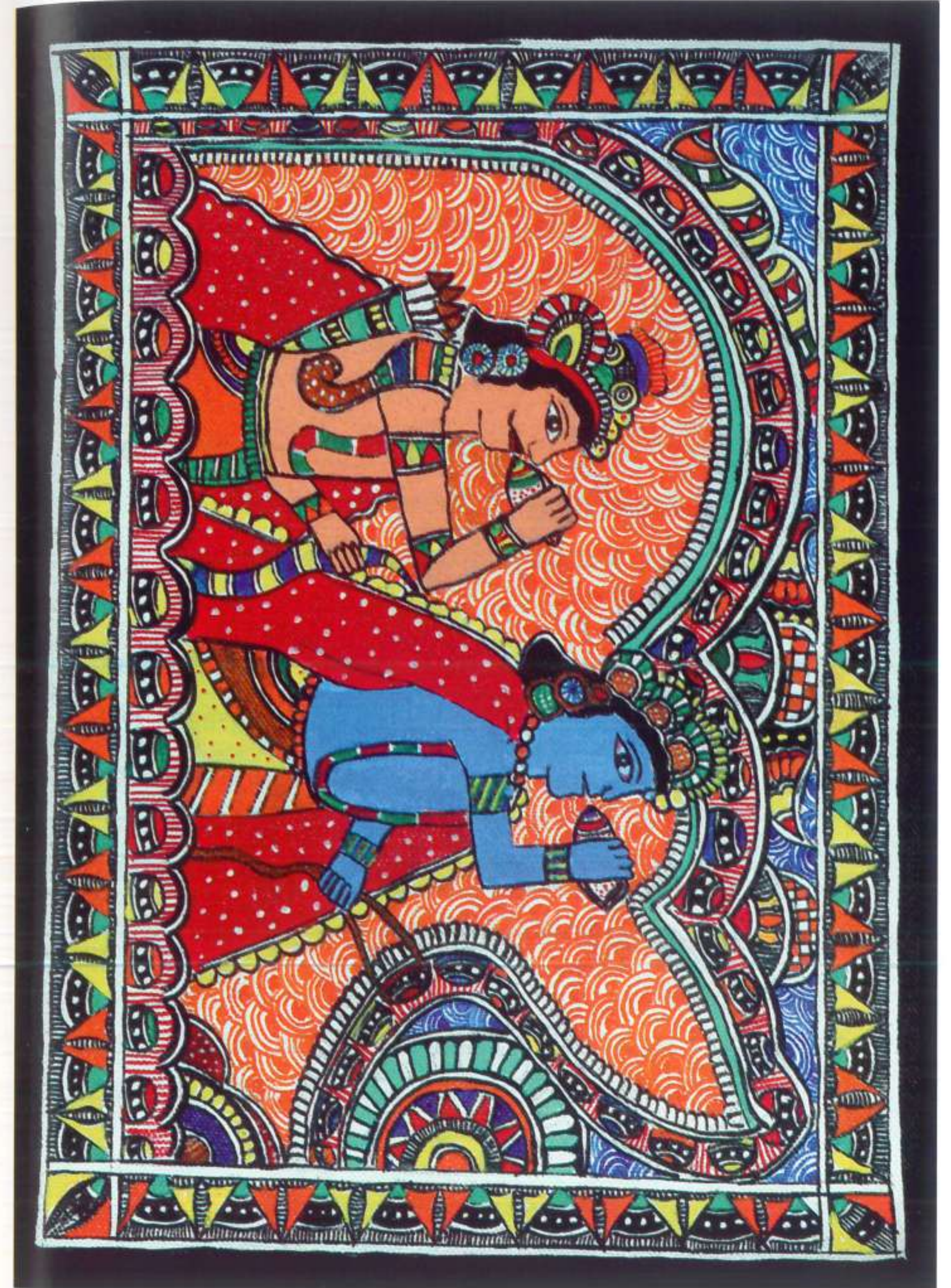
वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ 10-16॥

भावार्थ: ताहि लेल अहीं अपन ओहि दिव्य विभूति के संपूर्णता सँ कहबा में समर्थ छी, जाहि विभूति द्वारा अहाँ एहि लोक में व्याप्त कय कऽ स्थित छी॥ 16॥

कथं विद्यामहं योगिस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥10-17॥

भावार्थ: हे योगेश्वर! हम कोन तरहे निरंतर चितन करैत अपनेके जानी हे भगवन्! अहाँ कोन-कोन भाव में हमरा द्वारा चितन करबा योग्य छी? ॥17॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि श्रृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ 10-18॥



भावार्थः हे जनार्दन! अपन योगशक्ति और विभूति के पुनः सेहो विस्तारपूर्वक कहल जाओ, कियेक तऽ अपनेक अमृतमय वचन सब के सुनैत हमरा तृप्ति नहि भऽ रहल अछि अर्थात सुनबाक उत्कण्ठा बनल रहैत अछि ॥18॥

* * *

भगवान द्वारा अपन विभूति और योगशक्तिक वर्णन

श्रीभगवानुवाच:

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥10-19॥

भावार्थ: श्री भगवान बजलाह- हे कुरुश्रेष्ठ! आब हम जे हमर दिव्य विभूति अछि, ओकरा अहाँक लेल प्रधानता सँ कहब; किएक तँ हमर विस्तारक अंत नहि अछि ॥19॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ 10-20॥

भावार्थ: हे अर्जुन! हम सब भूतक हृदय में स्थित सबहक आत्मा छी तथा संपूर्ण भूतक आदि, मध्य और अंतो में हमही छी ॥ 20॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥ 10-21॥

भावार्थ: हम अदिति के बारहो पुत्र में विष्णु और ज्योति में किरण बला सूर्य छी तथा हम उनचास वायुदेवताक तेज और नक्षत्रक अधिपति चंद्रमा छी ॥21 ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ 10-22 ॥

भावार्थ: हम वेद में सामवेद, देवता लोकनि में इंद्र, इंद्रिय में मोन और भूत प्राणिक चेतना अर्थात् जीवन-शक्ति छी ॥ 22 ॥

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥ 10-23 ॥

भावार्थ: हम एकादशो रुद्र में शंकर छी और यक्ष तथा राक्षस में धनक स्वामी कुबेर छी। हम आठो वसु में अग्नि छी और शिखरबला पर्वत में सुमेरु पर्वत छी ॥ 23 ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥10-24 ॥

भावार्थ: पुरोहितक मुखिया बृहस्पति हमरे बुझू। हे पार्थ! हम सेनापती में स्कंद और जलाशय में समुद्र छी ॥ 24 ॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥10-25 ॥

भावार्थ: हम महर्षि लोकनि में भृगु और शब्द सब में एक अक्षर अर्थात् ओंकार छी। सब प्रकारक यज्ञ में जपयज्ञ और स्थिर रहय बला में हिमालय पहाड़ छी ॥ 25 ॥

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥10-26 ॥

भावार्थ: हम सब गाछ में पीपर के गाछ, देवर्षि सब में नारद मुनि, गन्धर्व में चित्ररथ और सिद्ध में कपिल मुनि छी ॥ 26 ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
एरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ 10-27 ॥

भावार्थ: घोड़ा में अमृत के सँग उत्पन्न होमय बला उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, श्रेष्ठ हाथि में ऐरावत नामक हाथी और मनुष्य सब में हमरा राजा बुझू ॥27 ॥

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥ 10-28 ॥

भावार्थः हम शस्त्र में वज्र और गौ में कामधेनु छी। शास्त्रोक्त रीति सँ सन्तानक उत्पत्ति हेतु कामदेव छी और साँप में सर्पराज वासुकि छी ॥28 ॥

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितॄणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥10-29 ॥

भावार्थः हम नाग में (नाग और साँप ई दू प्रकारक साँपे के प्रजाति छैक।) शेषनाग और जलचरक अधिपति वरुण देव छी और पितर में अर्यमा नामक पितर तथा शासन करय बला में यमराज हमही छी ॥29 ॥

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥10-30 ॥

भावार्थः हम दैत्य में प्रह्लाद और गणना करय बलाक समय (क्षण, घड़ी, दिन, पक्ष, मास आदि में जे समय अछि ओ हम छी) छी तथा पशु में मृगराज और चिरई में गरुड़ छी ॥30 ॥

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ॥10-31 ॥

भावार्थः हम पवित्र करय बला में वायु और शस्त्रधारी में श्रीराम छी तथा माँछ में मगरमच्छ छी और नदी में श्री भागीरथी गंगाजी छी ॥31 ॥

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥10-32 ॥

भावार्थः हे अर्जुन! सृष्टिक आदि और अंत तथा मध्यो में हमही छी। हम विद्या में अध्यात्मविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और परस्पर विवाद करय बला के तत्व-निर्णय के लेल कैल जाय बला वाद छी ॥32 ॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वंद्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥10-33 ॥

भावार्थः हम अक्षर अकार छी और समास में द्वंद्व नामक समास छी। अक्षयकाल अर्थात् कालो के महाकाल तथा सब दिस मुखबला, विराट्स्वरूप, सबहक धारण-पोषण करय बला सेहो हमही छी ॥33 ॥

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥10-34 ॥

भावार्थः हम सभक नाश करय बला मृत्यु और उत्पन्न होइ बला के उत्पत्ति हेतु छी तथा स्त्री कीर्ति (कीर्ति आदि ई सात देवताक स्त्री और स्त्रीवाचक नाम बला गुण सेहो प्रसिद्ध अछि, ताहि लेल दुनू प्रकारे भगवानक विभूति अछि), श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा छी ॥34 ॥

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥10-35 ॥

भावार्थ: आओर गायन करय योग्य श्रुति में हम बृहत्साम और छंद में गायत्रीक छंद छी तथा महीना में माघ और ऋतु में वसंत हम छी ॥35 ॥

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥10-36 ॥

भावार्थ: हम छल करय बला के लेल जूआ और प्रभावशाली पुरुषक प्रभाव छी। हम जीतय बला के लेल विजय छी, निश्चय करय बला के लेल निश्चय और सात्त्विक पुरुषक सात्त्विक भाव छी ॥36 ॥

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥10-37 ॥

भावार्थ: वृष्णिवंशी में (यादव के अंतर्गत एक वृष्णि वंश सेहो छल) वासुदेव अर्थात् हम स्वयं अहाँक सखा, पाण्डव में धनञ्जय अर्थात् अहाँ, मुनि में वेदव्यास और कवि में शुक्राचार्य सेहो हमही छी ॥37 ॥

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥10-38 ॥

भावार्थ: हम दमन करय बला के लेल दंड अर्थात् दमन करबाक शक्ति छी, जीतय के इक्षा राखय बला के नीति छी, गुप्त रखबा योग्य भाव के रक्षक मौन छी और ज्ञानवान लोकनि के तत्त्वज्ञान हमही छी ॥38 ॥

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥10-39 ॥

भावार्थ: और हे अर्जुन! जे सब भूतक उत्पत्ति के कारण अछि, ओहो हमही छी, किएक तऽ एहेन चर और अचर कोनो भूत नहि अछि, जे हमरा सँ अलग हो ॥39 ॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥10-40 ॥

भावार्थ: हे परंतप! हमर दिव्य विभूतिक अंत नहि अछि, हम अपन विभूति के ई विस्तार तऽ अहाँ लेल एकदेश सँ अर्थात् संक्षेप में कहलहुँ अछि ॥40 ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥10-41 ॥

भावार्थ: जे-जे विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कांतियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु अछि, ओहि-ओहि के अहाँ हमर तेजक अंशे के अभिव्यक्ति बुझू ॥41 ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥10-42॥

भावार्थ: अथवा हे अर्जुन! एहि बहुत के बुझबा सँ अहाँ के की प्रयोजन अछि। हम एहि संपूर्ण जगत् के अपन योगशक्ति के एक अंश मात्र सँ धारण कयकें स्थित छी॥ 10-42॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥10॥

***

अथैकादशोऽध्याय

विश्वरूपदर्शनयोग



विश्वरूप के दर्शन हेतु अर्जुनक प्रार्थना

अर्जुन उवाच:

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ 11-1 ॥

भावार्थ: अर्जुन बजलाह- हमरा पर अनुग्रह करबाक लेल अहाँ जे परम गोपनीय अध्यात्म विषयक वचन अर्थात उपदेश कहलियैक, ओहिसँ हमर ई अज्ञानता नष्ट भऽ गेल अछि ॥ 1 ॥

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वतः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ 11-2 ॥

भावार्थ: कियेक तऽ हे कमलनेत्र! हम अहाँसँ भूतक उत्पत्ति और प्रलय विस्तारपूर्वक सुनलहुँ तथा अपनेक अविनाशी महिमा सेहो सुनने छी ॥ 2 ॥

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ 11-3 ॥

भावार्थ: हे परमेश्वर! अहाँ अपनेके जेहन कहैत छियैक, ई ठीक ओहने अछि, परन्तु हे पुरुषोत्तम! अहाँक ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज सँ युक्त ऐश्वर्य-रूप के हम प्रत्यक्ष देखय चाहैत छी ॥ 3 ॥

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ 11-4 ॥

भावार्थ: हे प्रभो! (उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा अन्तर्यामी रूप सँ शासन करय बला होइ सँ भगवानक नाम 'प्रभु' अछि) यदि हमरा द्वारा अहाँक ओहि रूप के देखनाइ शक्य अछि- एहेन अहाँ मानैत छी, तऽ योगेश्वर! ओहि अविनाशी स्वरूपक दर्शन हमरो कराऊ ॥ 4 ॥

***

भगवान द्वारा अपन विश्व रूपक वर्णन

श्रीभगवानुवाच:

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥11-5 ॥

भावार्थ: श्री भगवान बजलाह- हे पार्थ! आब अहाँ हमर सैकड़ो-हजारो नाना प्रकारक और नाना वर्ण तथा नाना आकृति बला अलौकिक रूप सब के देखू ॥ 5 ॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ 11-6 ॥

भावार्थ: हे भरतवंशी अर्जुन! अहाँ हमरा में आदित्यक अर्थात अदिति के द्वादश पुत्र सब के, आठ वसु के, एकादश रुद्र के, दुनू अश्विनीकुमार के

और उनचास मरुद्गण के देखु औरो पहिने सँ नहि देखल अनेक आश्चर्यमय रूप सब के देखु ॥ 6 ॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ 11-7 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! आब हमर एहि शरीर में एक जगह व्याप्त चराचर सहित सम्पूर्ण जगत के देखु तथा औरो जे किछु देखबा चाहैत छी से देखू ॥ 7 ॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ 11-8 ॥

भावार्थ: परन्तु हमरा अहाँ अपन अई प्राकृत नेत्र सँ देखबा में निःसंदेह समर्थ नहि छी, ताहि लेल हम अहाँकि दिव्य अर्थात अलौकिक चक्षु दैत छी, जाहि सँ अहाँ हमर ईश्वरीय योग शक्ति के देखि सकी ॥ 8 ॥

***

संजय द्वारा धृतराष्ट्र के प्रति विश्वरूपक वर्णन

संजय उवाच:

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ 11-9 ॥

भावार्थ: संजय बजलाह- हे राजन्! महायोगेश्वर और सब पापक नाश करय बला भगवान एहि प्रकार सँ कहिकय अर्जुन के परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्यस्वरूप देखओलाहा ॥ 9 ॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ 11-10 ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ 11-11 ॥

भावार्थ: अनेक मुख और नेत्र सँ युक्त, अनेक अद्भुत दर्शन बला, बहुतो दिव्य भूषण सँ युक्त और बहुतो दिव्य शस्त्र के धारण कयने और दिव्य गंधक पूरा शरीर में लेप कयने, सब प्रकारक आश्चर्य सँ युक्त, सीमारहित और सब दिस मुख कयने विराट्स्वरूप परमदेव परमेश्वर के अर्जुन देखलाह ॥10-11 ॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ 11-12 ॥

भावार्थ: आकाश में जेना हजारों सूर्य के एक सँग उदय होयबा सँ प्रकाश उत्पन्न भेल हो, ओहो ओहि विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचिते हो ॥ 12 ॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ 11-13 ॥

भावार्थ: पाण्डुपुत्र अर्जुन ओहि समय नाना प्रकार सँ विभक्त अर्थात पृथक-पृथक सम्पूर्ण जगतक देवक देव श्रीकृष्ण भगवान के ओहि शरीर में एक ठाम व्याप्त देखलाह ॥ 13 ॥

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ॥ 11-14 ॥

भावार्थ: हुनकर अनंतर आश्चर्य सँ चकित और पुलकित शरीर अर्जुन प्रकाशमय विश्वरूपी परमात्मा के श्रद्धा-भक्ति सहित सिर सँ प्रणाम कय हाथ जोड़ि बजलाह ॥ 14 ॥

* * *

अर्जुन द्वारा भगवानक विश्वरूप के देखनाइ और हुनकर स्तुति केनाइ

अर्जुन उवाच:

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥11-15॥

भावार्थ: अर्जुन बजलाह - हे देव! हम अहाँक सम्पूर्ण देवक तथा अनेक भूतक समुदाय के, कमलक आसन पर विराजित ब्रह्मा के, महादेव के और सम्पूर्ण ऋषी के तथा दिव्य साँप के देखैत छी ॥15॥

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रंपश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिपश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥11-16॥

भावार्थ: हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामिन्! अहाँके अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्र सँ युक्त तथा सब दिस सँ रूप बला देखैत छी। हे विश्वरूप! हम अहाँके के ने अन्त देखैत छी, ने मध्य के आ ने आदिए के ॥16॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशि सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥11-17॥

भावार्थ: अहाँके हम मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब दिस सँ प्रकाशमान तेजक पुंज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्यक सदृश ज्योतियुक्त,



कठिनता सँ देखय जाय योग्य और सब दिस सँ अप्रमेयस्वरूप देखि रहल छी ॥17॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यंत्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥11-18॥

भावार्थ: अहीं बुझबा योग्य परम अक्षर अर्थात परब्रह्म परमात्मा छी। अहीं एहि जगतक परम आश्रय छी, अहीं अनादि धर्म के रक्षक छी और अहीं अविनाशी सनातन पुरुष छी। एहेन हमर माननाई अछि ॥18॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रंस्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥11-19॥

भावार्थ: अहाँ आदि, अंत और मध्य सँ रहित, अनन्त सामर्थ्य सँ युक्त, अनन्त भुजाबला, चन्द्र-सूर्य रूप नेत्र बला, प्रज्वलित अग्निरूप मुखबला और अपन तेज सँ एहि जगत के संतृप्त करैत देखा रहल छी ॥19॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदंलोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥11-20॥

भावार्थ: हे महात्मन्! ई स्वर्ग और पृथ्वी के बीचक सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशा एकमात्र अहीं सँ परिपूर्ण अछि तथा अहाँक एहि अलौकिक और भयंकर रूप के देखिकय तीनू लोक अतिव्यथा के प्राप्त भऽ रहल अछि ॥20॥

अमी हि त्वां सुरसङ्घा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः
॥ 11-21 ॥

भावार्थः वैह देवताक समूह अहाँ में प्रवेश करैत छथि और किछु भय सँ हाथ जोड़ि अहाँक नाम और गुणक उच्चारण करैत छथि तथा महर्षि और सिद्ध पुरुषक समुदाय 'कल्याण हो' एहन कहिकय उत्तम-उत्तम स्तोत्र द्वारा अहाँक स्तुति करैत छथि ॥21 ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्याविश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गंधर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घावीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥11-22 ॥

भावार्थः जे ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य तथा आठ वसु, साध्यगण, विश्वदेव, अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण और पितरक समुदाय तथा गंधर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्ध पुरुष के समुदाय छथि - ओ सब सेहो विस्मित भऽ अहाँ के देखैत छथि ॥22 ॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रंमहाबाहो बहुबाहूरूपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालंदृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥11-23 ॥

भावार्थः हे महाबाहो! अहाँक बहुतो मुख और नेत्र बला, बहुत हाथ, जांघ और पैर बला, बहुतो उदर बला और बहुत दाँतक कारण अत्यन्त विकराल महान रूप के देखिकय सब आदमी व्याकुल भऽ रहल छथि और हमहुँ व्याकुल भऽ रहल छी ॥23 ॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णंव्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो
॥11-24 ॥

भावार्थः कियेक तऽ हे विष्णो! आकाश के स्पर्श करय बला, दैदीप्यमान, अनेक वर्ण सँ युक्त तथा पसरल मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्र सँ युक्त अहाँकि देखिकय भयभीत अन्तःकरण बला हम धीरज और शान्ति नहि पाबि रहल छी ॥24 ॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानिदृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥11-25 ॥

भावार्थः दाँतक कारण विकराल और प्रलयकालक अग्नि के समान प्रज्वलित अहाँक मुँह के देखिकय हम दिशा के नहि बुझि रहल छी और सुख सेहो नहि पाबि रहल छी। ताहिलेल हे देवेश! हे जगन्निवास! अपने प्रसन्न होइयौ ॥25 ॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥11-26 ॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गै ॥11-27 ॥

भावार्थ: ओ सब धृतराष्ट्र के पुत्र राजाक समुदाय सहित अहाँ में प्रवेश कय रहल छथि और भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा ओ कर्ण और हमर पक्षक सेहो प्रधान योद्धाक सहित सबहक सब अहाँक दाँत के कारण विकराल भयानक मुख में बहुत वेग सँ दौड़ैत प्रवेश कय रहल छथि और कतेको चूर्ण भेल माथ सहित अहाँके दाँतक बीच में देखा रहल छथि ॥26-27 ॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीराविशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥11-28 ॥

भावार्थ: जहिना नदीक बहुत जलक प्रवाह स्वाभाविके समुद्रे दिस दौड़ैत अछि अर्थात समुद्र में प्रवेश करैत अछि, तहिना ओ नरलोकक वीर सेहो अहाँक प्रज्वलित मुख में प्रवेश कय रहल छथि ॥28 ॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगाविशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥11-29 ॥

भावार्थ: जहिना फतिगा मोहवश नष्ट होयबाक लेल प्रज्वलित अग्नि में अतिवेग सँ दौड़ैत अछि, तहिना ई आदमी सब सेहो अपन नाशक लेल अहाँक मुख में अतिवेग सँ दौड़ैत प्रवेश कय रहल छथि ॥29 ॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रंभासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥11-30 ॥

भावार्थ: अहाँ ओहि सम्पूर्ण लोक के प्रज्वलित मुख द्वारा ग्रास करैत सब दिस सँ बेर-बेर चाटी रहल छी। हे विष्णो! अहाँक उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत के तेज द्वारा परिपूर्ण कय तपा रहल अछि ॥30 ॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपोनमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यंन हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥11-31 ॥

भावार्थ: हमरा बताऊ कि अहाँ उग्ररूप बला के छी? हे देव में श्रेष्ठ! अहाँके प्रणाम अछि। अपने प्रसन्न होइयौ। आदि पुरुष अहाँके हम विशेष रूप सँ बुझय चाहैत छी कियेक तऽ हम अपनेक प्रवृत्ति के नहि जनैत छी ॥31 ॥

* * *

भगवान द्वारा अपन प्रभावक वर्णन और अर्जुन के युद्धक लेल उत्साहित केनाइ

श्रीभगवानुवाच:

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धोलोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः
॥11-32 ॥

भावार्थ: श्री भगवान बजलाह- हम लोकक नाश करय बला महाकाल छी। एहि समय एही लोक के नष्ट करबाक लेल प्रवृत्त भेल छी। तें जे प्रतिपक्षक सेना में स्थित योद्धा लोकनि छथि, ओ सब सेहो नहि रहताह अर्थात यदि अहाँ युद्ध नई करब तैयो हिनका सभक नाश हेबे करतनि ॥32 ॥

**तस्मात्त्वमुक्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥11-33॥**

भावार्थ: अतः अहाँ उठू! यश प्राप्त करू और शत्रु के जीतिकय धन-धान्य सँ सम्पन्न राज्य के भोगू। ई सबटा शूरवीर पहिनहे सँ हमरे द्वारा मारल गेल छथि। हे सव्यसाचि! (बामा हाथ सँ सेहो बाण चलयबाक अभ्यास भेला के कारणे अर्जुन के नाम 'सव्यसाची' पडल छलन्हि) अहाँ तऽ खाली निमित्तमात्र बनू॥33॥

**द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठायुध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥11-34॥**

भावार्थ: द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा औरो बहुत लोकनि हमरा द्वारा मारल गेल शूरवीर योद्धा सब के अहाँ मारु। भय नई करू। निःसंदेह अहाँ युद्ध में दुश्मन सँ जीतब। ताहिलेल युद्ध करू ॥ 34॥

* * *

भयभीत भेल अर्जुन द्वारा भगवानक स्तुति और चतुर्भुज रूपक दर्शन करयबा लेल प्रार्थना

संजय उवाच:

**एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णंसगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥11-35॥**

भावार्थ: संजय बजलाह - केशव भगवान के अहि वचन के सुनि मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़िकय कँपैत प्रणाम कय, पुनः बहुत भयभीत भऽ सेहो भगवन श्रीकृष्ण के प्रणाम करैत गदगद वाणी सँ बजलाह॥35॥

अर्जुन उवाच:

**स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः
॥11-36॥**

भावार्थ: अर्जुन बजलाह - हे अन्तर्यामी! ई योग्ये अछि जे अहाँक नाम, गुण और प्रभावक कीर्तन सं जगत अति हर्षित भऽ रहल अछि और अनुराग के सेहो प्राप्त भऽ रहल अछि तथा भयभीत राक्षस सभ दिशा में भागि रहल छथि और सब सिद्धगणक समुदाय नमस्कार कय रहल छथि॥36॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥11-37॥

भावार्थ: हे महात्मन्! ब्रह्माक आदिकर्ता सेहो और सबसँ पैघ अहाँक लेल ओ कोना प्रणाम करथि किएक तऽ हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जे सत्, असत् और ओहिसँ अलग अक्षर अर्थात सच्चिदानन्दघन ब्रह्म अछि, ओ अहि छी ॥37॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥11-38॥

भावार्थ: अहाँ आदिदेव और सनातन पुरुष छी, अहाँ एहि जगत के परम आश्रय और बुझय बला तथा बुझबा योग्य और परम धाम छी। हे अनन्तरूप! अहाँसँ ई जगत व्याप्त अर्थात परिपूर्ण अछि ॥38॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥11-39॥

भावार्थ: आहाँ वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजा के स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के पिता सेहो छी। अहाँक लेल हजारो बेर प्रणाम! प्रणाम हो!! अहाँक लेल पुनः बेर-बेर प्रणाम! प्रणाम! ॥39॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वंसर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥11-40॥

भावार्थ: हे अनन्त सामर्थ्यबला! अहाँक लेल आगा और पाछाँ सँ सेहो प्रणाम! हे सर्वात्मन्! अहाँक लेल सबे दिस सँ प्रणाम अछि, कियेक तऽ अहाँ अनन्त पराक्रमशाली, समस्त संसार में व्याप्त छी, एहिसँ अहि सर्वरूप छी ॥40॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदंमया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥11-41॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षंतत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥11-42॥

भावार्थ: अहाँक एहि प्रभाव के नई जनैत, अहाँ हमर सखा छी एहन मानिकय प्रेम सँ अथवा प्रमाद सँ सेहो हम 'हे कृष्ण!', 'हे यादव !' 'हे सखे!' एहि प्रकारे जे किछु बिनु सोचने-बुझने हठात् कहलहुँ और हे अच्युत! अहाँ जे हमरा द्वारा विनोदक लेल कयल गेल विहार, शय्या, आसन और भोजनादि में एसगरे अथवा ओहि सखा सबहक सामने सेहो अपमानित कयने छी- ओहि सब अपराध अप्रमेयस्वरूप अर्थात अचिन्त्य प्रभाव बला हम अपने सँ क्षमा मँगैत छी ॥ 41-42 ॥

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
अहाँ न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्योलोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव
॥ 11-43 ॥

भावार्थ: अहाँ एही चराचर जगत के पिता और सबसँ पैघ गुरु एवं अति पूजनीय छी। हे अनुपम प्रभावबला! तीनू लोक में अहाँ जकाँ दोसर कियो नहि अछि, फेर बेसी कोना भऽ सकैत अछि ॥43॥

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायंप्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥11-44॥

भावार्थ: अतएव हे प्रभो! हम शरीर के भलीभाँति अहाँक चरण में निवेदित कय, प्रणाम करैत, स्तुति करबा योग्य अहाँ सन ईश्वर के प्रसन्न हेबाक लेल प्रार्थना करैत छी। हे देव! पिता जेना पुत्र के, सखा जेना सखा के और पति जेना प्रियतमा पत्नी के अपराध सहन करैत अछि-ओहिना अहुँ हमर अपराध के सहन करय योग्य छी ॥44॥

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपंप्रसीद देवेश जगन्निवास ॥11-45॥

भावार्थ: हम पहिने नई देखल गेल अपनेक एहि आश्चर्यमयी रूप के देखिकय हर्षित भऽ रहल छी और हमर मोन भय सँ अति व्याकुल सेहो भऽ रहल अछि, तें अहाँ अपन ओहि चतुर्भुज विष्णु रूपे के हमरा देखाऊ। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होऊ॥ 45॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेनसहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥11-46॥

भावार्थ: हम ओहिना अहाँकि मुकुट धारण कयने तथा गदा और चक्र हाथ में लेने देखय चाहैत छी। ताहिलेल हे विश्वस्वरूप! हे सहस्रबाहो! अहाँ ओही चतुर्भुज रूप सँ प्रकट होऊ॥ 46॥

* * *

भगवान द्वारा अपन विश्वरूप के दर्शनक महिमा के कथन तथा चतुर्भुज और सौम्य रूप के देखेनाई

श्रीभगवानुवाच:

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदंरूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यंयन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥11-47॥

भावार्थ: श्री भगवान बजलाह- हे अर्जुन! अनुग्रहपूर्वक हम अपन योगशक्ति के प्रभाव सँ ई हमर परम तेजोमय, सबहक आदि और सीमारहित विराट् रूप अहाँकि देखओलहुँ, जेकरा अई सँ पहिने अहाँ के छोड़ि कियो दोसर नई देखने छल ॥47॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवं रूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ 11-48॥

भावार्थ: हे अर्जुन! मनुष्य लोक में एहि प्रकारक विश्व रूप बला हम ने वेद और यज्ञक अध्ययन सँ, ने दान सँ, ने क्रिया सँ और ने उग्र तपे सँ अहाँक अलावे दोसर द्वारा देखल जा सकैत छी।48॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावोदृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यतेपभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वंतदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ 11-49 ॥

भावार्थः हमर एहि प्रकारक अहि विकराल रूप के देखिकय अहाँके व्याकुलता नई हेबाक चाही और मूढ़भाव सेहो नई हेबाक चाही। अहाँ भयरहित और प्रीतियुक्त मोन बला भऽ कऽ हमर ओही शंख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त चतुर्भुज रूप के पुनः देखु ॥49 ॥

संजय उवाच:

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनंभूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥11-50 ॥

भावार्थः संजय बजलाह- वासुदेव भगवान, अर्जुन के एहि तरहें कहिकय फेर सँ अपन ओहने चतुर्भुज रूप के देखेलखिन और फेर महात्मा श्रीकृष्ण सौम्यमूर्ति भऽ कऽ भयभीत अर्जुन के धीरज देलखिन ॥50 ॥

***

बिना अनन्य भक्ति के चतुर्भुज रूप के दर्शनक दुर्लभताक और फलसहित अनन्य भक्तिक कथन

अर्जुन उवाच:

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥11-51 ॥

भावार्थः अर्जुन बजलाह- हे जनार्दन! अहाँक एहि अतिशांत मनुष्य रूप के देखिकय आब हम स्थिरचित्त भऽ गेलहुँ और अपन स्वाभाविक स्थिति में आबि गेल छी ॥51 ॥

श्रीभगवानुवाच:

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्‍क्षिणः ॥11-52 ॥

भावार्थः श्री भगवान बजलाह- हमर जे चतुर्भज रूप अहाँ देखलहुँ, ओ सुदुर्दर्श अछि अर्थात् एकर दर्शन बहुते दुर्लभ अछि। देवता सेहो हरिदम एहि रूप के दर्शनक आकांक्षा करैत रहैत छथि ॥52 ॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥11-53 ॥

भावार्थः जाहि प्रकारे अहाँ हमरा देखलहुँ - ओहि प्रकारे चतुर्भुज रूप बला हम ने वेद सँ, ने तप सँ, ने दान सँ आ ने यज्ञे सँ देखल जा सकैत छी ॥53 ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥11-54 ॥

भावार्थः परन्तु हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्तिक द्वारा एहि प्रकारक चतुर्भुज रूपबला हम प्रत्यक्ष देखबाक लेल, तत्व सँ बुझबाक लेल तथा

प्रवेश करबाक लेल अर्थात एकीभाव सँ प्राप्त होयबा लेल सेहो शक्य छी ॥54 ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥11-55 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! जे पुरुष खाली हमरे लेल सम्पूर्ण कर्तव्य कर्म के करय बला अछि, हमर परायण अछि, हमर भक्त अछि, आसक्तिरहित अछि और सम्पूर्ण भूतप्राणी सब वैरभाव सँ रहित अछि, ओ अनन्यभक्तियुक्त पुरुष हमरा पबैत छथि ॥55 ॥

***

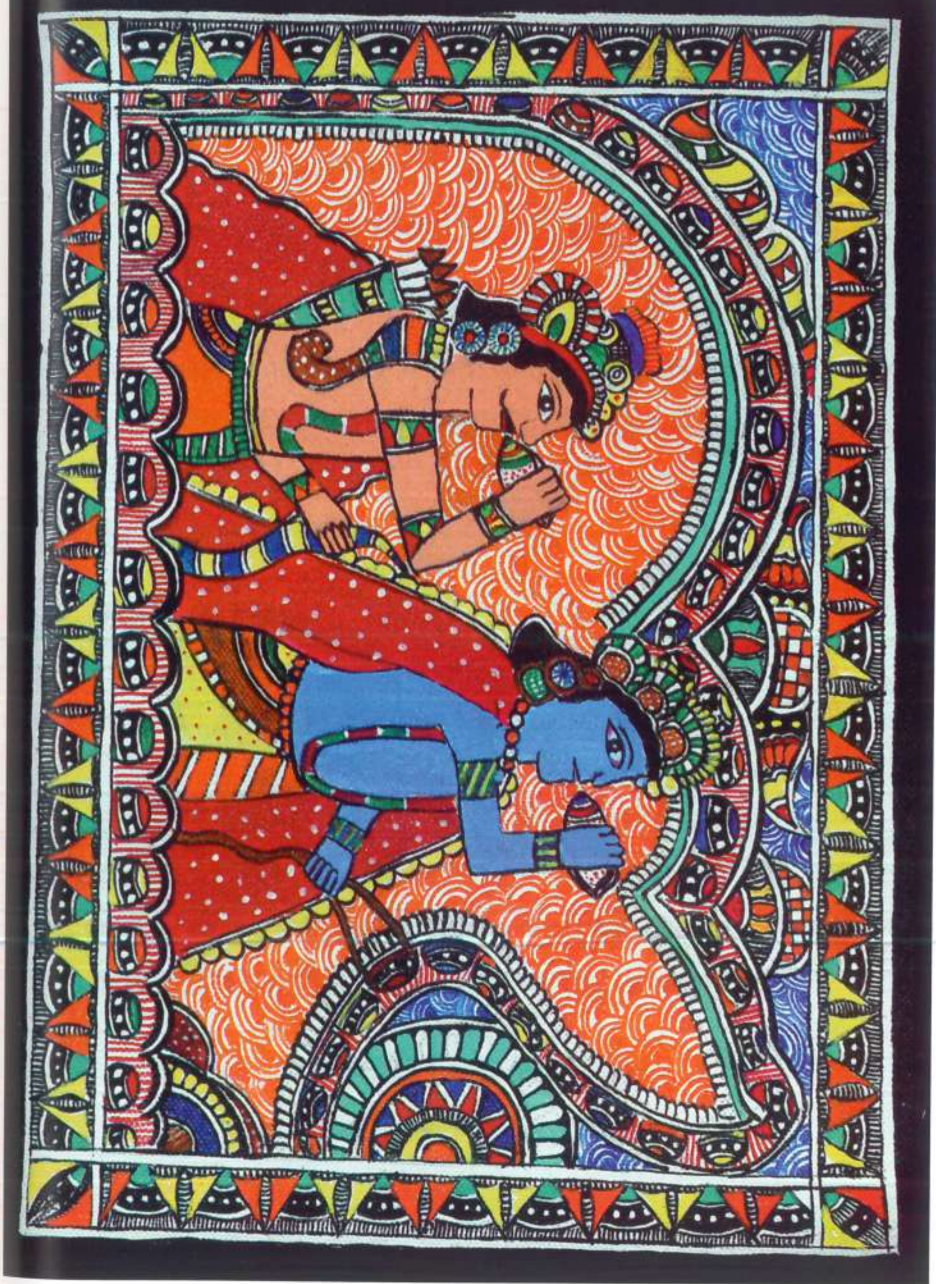
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥11 ॥

***

अथ द्वादशोऽध्याय

भक्तियोग





साकार और निराकार के उपासक के उत्तमताक निर्णय और भगवत्प्राप्तिक उपायक विषय

अर्जुन उवाचः

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ 12-1 ॥

भावार्थः अर्जुन बजलाह - जे अनन्य प्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकार सँ निरन्तर अहाँक भजन-ध्यान में लागि कय अहाँ सन सगुण रूप परमेश्वर के और दोसर जे खाली अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्मे के अतिश्रेष्ठ भाव सँ भजैत छथि - ओहि दुनू प्रकारक उपासक में अति उत्तम योगवेत्ता के छथि ? ॥ 1 ॥

श्रीभगवानुवाचः

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥12-2 ॥

भावार्थः श्री भगवान बजलाह - हमरा में मोन के एकाग्र कय निरंतर हमर भजन-ध्यान में लागल (गीता अध्याय 11 श्लोक 55 के देखी) जे भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा सँ युक्त भऽ हमरा सन सगुणरूप परमेश्वर के भजैत छथि, ओ हमरा योगीजन अति उत्तम योगी मान्य छथि ॥2 ॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥12-3 ॥

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥12-4॥

भावार्थ: परन्तु जे पुरुष इन्द्रियक समुदाय के नीक जकाँ वश में कय मन-बुद्धि सँ अलग, सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और हरिदम एकरस रहय बला, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के निरन्तर एकीभाव सँ ध्यान करैत भजैत छथि, ओ सम्पूर्ण भूतक हित में रत और सबमें समान भावबला योगी हमरे पबैत छथि ॥3-4॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥12-5॥

भावार्थ: ओहि सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में आसक्त चित्तबला पुरुषक साधन में परिश्रम विशेष अछि कियेक तऽ देहाभिमानी लोकनि द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त कयल जाइत अछि ॥5॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥12-6॥

भावार्थ: लेकिन जे हमर में परायण रहय बला भक्तजन सम्पूर्ण कर्म के हमरा में अर्पण कय हमरा सन सगुणरूप परमेश्वरे के अनन्य भक्तियोग सँ निरन्तर चिन्तन करैत भजैत छथि। (एहि श्लोकक विशेष भाव बुझबा लेल गीता अध्याय 11 श्लोक 55 देखी) ॥6॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥12-7॥

भावार्थ: हे अर्जुन! ओहन हमरा में चित्त लगबय बला प्रेमी भक्त सब के हम शीघ्रहि मृत्यु रूपी संसार-समुद्र सँ उद्धार करैत छी ॥7॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥12-8॥

भावार्थ: हमरा में मोन लगा कय और हमरे में बुद्धियो के लगा, एकर उपरान्त अहाँ हमरे में निवास करब, एहि में कोनो संशय नहि अछि ॥8॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥12-9॥

भावार्थ: यदि अहाँ मोन के हमरा में अचल स्थापन करबा में समर्थ नहि छी, तऽ हे अर्जुन! अभ्यासरूपी योग द्वारा हमरा पयबाक इक्षा करू ॥9॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥12-10॥

भावार्थ: यदि अहाँ ओहु अभ्यास में सेहो असमर्थ छी, तऽ खाली हमरे लेल कर्म परायण भऽ जाउ। एहि तरहें हमरा निमित्त कर्म के करैत सेहो हमर प्राप्ति रूपी सिद्धिये के पायब ॥10॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥12-11॥

भावार्थः यदि हमर प्राप्ति रूपी योग पर आश्रित भऽ कय सेहो अहाँ उपरोक्त साधन करबा में असमर्थ छी, तऽ मन-बुद्धि आदि पर विजय पाबय बला भऽ सभ कर्मक फल के त्याग करू ॥11॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥12-12॥

भावार्थः मर्म के नहियो जनैत कयल गेल अभ्यास ज्ञान सँ श्रेष्ठ अछि, ज्ञान सँ हमरा सन परमेश्वर के स्वरूपक ध्यान श्रेष्ठ अछि और ध्यान सँ सब कर्मक फलक त्याग श्रेष्ठ अछि, कियेक तँ त्याग सँ तत्काले परम शान्ति होइत अछि ॥12॥

***

भगवत्-प्राप्त पुरुषोंक लक्षण

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥12-13॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥12-14॥

भावार्थः जे पुरुष लोकनि भूत में द्वेष भाव सँ रहित, स्वार्थ रहित सबहक प्रेमी और हेतु रहित दयालु अछि तथा ममता सँ रहित, अहंकार सँ रहित, सुख-दुःखक प्राप्ति में सम और क्षमावान अछि अर्थात अपराध करय बला के सेहो अभय दान दई बला अछि तथा जे योगी निरन्तर संतुष्ट अछि, मोन-इन्द्रिय सहित शरीर के वश में कयने अछि और हमरा में दृढ़ निश्चय

वाला अछि- ओहन हमरा में अर्पण केल गेल मन-बुद्धिबला हमर भक्त हमर प्रिय अछि ॥13-14॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥12-15॥

भावार्थः जाहि चीज सँ कोनो जीव के उद्वेग नहि होइत अछि और जे स्वयं सेहो कोनो जीव सँ उद्वेग के नहि पबैत अछि तथा जे हर्ष, अमर्ष (दोसराक उन्नति के देखिकय संताप हेबाक नाम 'अमर्ष' अछि), भय और उद्वेगादि सँ रहित अछि ओ भक्त हमरा प्रिय अछि ॥15॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥12-16॥

भावार्थः जे पुरुष आकांक्षा सँ रहित, बाहर-भीतर सँ शुद्ध चतुर, पक्षपात सँ रहित और दुःख सब सँ छूटल अछि, ओ सब आरम्भक त्यागी हमर भक्त हमरा प्रिय अछि ॥16॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥12-17॥

भावार्थः जे ने कखनो हर्षित होइत अछि, ने द्वेष करैत अछि, ने शोक करैत अछि, ने कामना करैत अछि आ जे शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मक त्यागी अछि - वैह भक्तियुक्त पुरुष हमरा प्रिय अछि ॥17॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥12-18॥

भावार्थ: जे शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम अछि तथा सर्दी, गर्मी और सुख-दुःखादि द्वंद्व में सम अछि और आसक्ति सँ रहित अछि ॥18॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥12-19॥

भावार्थ: निंदा-स्तुति के समान बुझय बला, मननशील और जाहि कोनो प्रकार सं सेहो शरीरक निर्वाह हेबे में हरिदम संतुष्ट अछि और रहबाक स्थान में ममता और आसक्ति सँ रहित अछि - वैह स्थिरबुद्धि भक्तिमान पुरुष हमरा प्रिय अछि ॥19॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥12-20॥

भावार्थ: लेकिन जे श्रद्धायुक्त (वेद, शास्त्र, महात्मा और गुरुजन के तथा परमेश्वर के वचन में प्रत्यक्ष के सदृश विश्वासक नाम 'श्रद्धा' होइत अछि) पुरुष हमर परायण भऽ कय ऊपर कहल गेल धर्ममय अमृतक निष्काम प्रेमभाव सँ सेवन करैत छथि, ओहन भक्त हमरा अतिशय प्रिय छथि ॥20॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥12-21॥

***

अथ त्रयोदशोऽध्याय

श्रीभगवानुवाच



ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञक विषय

अर्जुन उवाच:

प्रकृति पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥13-1॥

भावार्थ: अर्जुन पुछलखिन - हे केशव! हम अहाँसँ प्रकृति एवं पुरुष, क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ और ज्ञान एवं ज्ञानक लक्ष्य के विषय में बुझय चाहैत छी ॥1॥

श्रीभगवानुवाच:

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥13-2॥

भावार्थ: श्री भगवान बजलाह - हे अर्जुन! ई शरीर 'क्षेत्र' (जहिना खेत में रोपल बीया के ओकरा अनुरूप फल समय पर प्रकट होइत अछि, ओहिना एहिमे रोपल गेल कर्मकें संस्कार रूपी बीयाक फल समय पर प्रकट होइत अछि, ताहिलेल एकर नाम 'क्षेत्र' कहल गेल अछि) एहि नाम सँ कहल जाइत अछि और एकरा जे जनैत अछि, हुनका 'क्षेत्रज्ञ' के नाम सँ हुनक तत्व के बुझय बला ज्ञानीजन कहाइत छथि ॥2॥

श्रीभगवानुवाच:

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥13-3॥

भावार्थ: हे अर्जुन! अहाँ सब क्षेत्र में क्षेत्रज्ञ अर्थात जीवात्मा के सेहो हमरे बुझू और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के अर्थात विकार सहित प्रकृति और पुरुष के जे तत्व सँ बुझनाईये ओ ज्ञान अछि - एहन हमर माननाई अछि ॥3॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे श्रृणु॥ ॥13-4॥

भावार्थ: ओ क्षेत्र जे और जेना अछि तथा जाहि विकार बला अछि और जाहि कारण सँ जे भेल अछि आ ओ क्षेत्रज्ञ सेहो जे और जेहन प्रभाववाला अछि- ओ सब संक्षेप में हमरा सँ सुनु ॥4॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥13-5॥

भावार्थ: ई क्षेत्र और क्षेत्रज्ञक तत्व ऋषि लोकनि के दिस सँ बहुतो प्रकार सँ कहल गले अछि और विविध वेदमन्त्र सँ सेहो विभागपूर्वक कहल गेल अछि तथा खूब बढियाँ सँ निश्चय कयल गेल युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्र के पद सँ सेहो कहल गेल अछि ॥5॥

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥13-6॥

भावार्थ: पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति सेहो तथा दसो

इन्द्रिय, एक मन और पाँचु इन्द्रियक विषय अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ॥6॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ 13-7॥

भावार्थ: इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल देहक पिण्ड, चेतना (शरीर और अन्तःकरण के एक प्रकारक चेतन-शक्ति।) और धृति-- एही प्रकारे विकारक सहित ई क्षेत्र संक्षेप में कहल गेल अछि ॥ 7॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ 13-8॥

भावार्थ: श्रेष्ठता के अभिमानक अभाव, दम्भाचरणक अभाव, कोनो प्राणी के कोनो तरहें नई सतेनाई सेहो, क्षमाभाव, मन-वाणी आदिक सरलता, श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु जनक सेवा, बाहर-भीतरक शुद्धि अन्तःकरणक स्थिरता और मन-इन्द्रिय सहित शरीरक निग्रह ॥ 8॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ 13-9॥

भावार्थ: एहि लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोग में आसक्तिक अभाव और अहंकारक सेहो अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोष के बेर-बेर विचार कयनाइ ॥ 9॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ 13-10 ॥

भावार्थ: पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि में आसक्तिक अभाव, ममताक नई भेनाइ आ प्रिय और अप्रियक प्राप्ति में सदिखने चित्त के सम रहनाई ॥ 10 ॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ 13-11 ॥

भावार्थ: हमरा सन परमेश्वर में अनन्य योग द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति आ एकान्त और शुद्ध देश में रहबाक स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यक समुदाय में प्रेम के नहि भेनाइ ॥13-11 ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ 13-12 ॥

भावार्थ: अध्यात्म ज्ञान में (जाहि ज्ञान सँ आत्मवस्तु और अनात्मवस्तु मानल जाय, ओहि ज्ञानक नाम 'अध्यात्म ज्ञान' अछि) नित्य व्याप्त और तत्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मे के देखनाइ - ई सब ज्ञान अछि और जे एकर विपरीत अछि ओ अज्ञानी अछि - एहन कहल गेल अछि ॥12 ॥

ज्ञेयं यत्तत्वप्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ ॥ 13-13 ॥

भावार्थ: जे बुझबा योग्य अछि आ जेकरा बुझिकय मनुष्य परमानन्द के पबैत अछि, ओकरा खूब बढियाँ सँ कहबैक। ओ अनादिबला परमब्रह्म ने सत्ते कहाइत अछि, ने असत्ते।। ॥ 13 ॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ 13-14 ॥

भावार्थ: ओ सब दिस हाथ-पैर बला, सब दिस नेत्र, सिर और मुख बला आ सब दिस कान बला अछि, कियेक तऽओ संसार में सबके व्याप्त कयकऽ स्थित अछि। ॥14 ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ 13-15 ॥

भावार्थ: ओ सम्पूर्ण इन्द्रियक विषय के बुझय बला अछि, परञ्च वास्तव में सब इन्द्रिय सँ रहित अछि तथा आसक्ति रहित भेलो पर सबहक धारण-पोषण करय बला और निर्गुण होयबो पर गुण के भोगय बला अछि॥ ॥15 ॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ 13-16 ॥
भावार्थ: ओ चराचर सब भूत के बाहर-भीतर परिपूर्ण अछि और चर-अचर सेहो वैह अछि। ओ सूक्ष्म भेला सँ अविज्ञेय अछि तथा अति समीप में सेहो वैह स्थित अछि ॥ 16 ॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥13-17॥

भावार्थ: ओ परमात्मा विभागरहित एक रूप सँ आकाश के सदृश परिपूर्ण भेला पर सेहो चराचर सम्पूर्ण भूतो में विभक्त-जेकाँ स्थित प्रतीत होइत अछि आओर ओ बुझय योग्य परमात्मा विष्णुरूप सँ से भूतक धारण-पोषण करय बला और रुद्ररूप सँ संहार करय बला तथा ब्रह्मरूप सँ सबके सृजन करय बाला अछि ॥17॥

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥13-18॥

भावार्थ: ओ परब्रह्म ज्योतिक सेहो ज्योति एवं माया सँ एकदम अलग कहल जाइत अछि। ओ परमात्मा बोधस्वरूप, बुझबा योग्य एवं तत्वज्ञान सँ प्राप्त करबा योग्य अछि और सबहक हृदय में विशेष रूप सँ स्थित अछि ॥18॥

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥13-19॥

भावार्थ: एहि प्रकारेँ क्षेत्र तथा ज्ञान और बुझबा योग्य परमात्माक स्वरूप संक्षेप में कहल गेल अछि। हमर भक्त एकरा तत्व सँ जानिकय हमर स्वरुप के पबैत अछि ॥19॥

***

ज्ञानसहित प्रकृति-पुरुषक विषय

श्रीभगवानुवाच:

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥13-20॥

भावार्थ: प्रकृति और पुरुष- एहि दुनुए के अहाँ अनादि बुझू और राग-द्वेषादि विकारक तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थ के सेहो प्रकृतिये सँ उत्पन्न बुझू ॥20॥

श्रीभगवानुवाच:

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥13-21॥

भावार्थ: कार्य (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध -एहि सभक नाम 'कार्य' अछि) और करण (बुद्धि, अहंकार और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा- एहि 13 टा के नाम 'करण' अछि) के उत्पन्न करबा में हेतु प्रकृति के कहल जाइत अछि और जीवात्मा सुख-दुःख के भोक्तपन में अर्थात भोगबाक हेतु कहल जाइत अछि ॥21॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥13-22॥

भावार्थ: प्रकृतिये में स्थित पुरुष प्रकृति सँ उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थक भोग करैत अछि और एहि गुणक संगे एहि जीवात्मा के नीक-ख़राब योनि में जन्म लेबाक कारण अछि। ॥22॥

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥13-23॥

भावार्थ: एही देह में स्थित ई आत्मा वास्तव में परमात्मे अछि। ओ साक्षी भेला सँ उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति दई बला हेबा सँ अनुमन्ता, सभक धारण-पोषण करय बला भेला सँ भर्ता, जीवरूप सँ भोक्ता, ब्रह्मा आदि के सेहो स्वामी भेला सँ महेश्वर और शुद्ध सच्चिदानन्दघन भेला सँ परमात्मा-एहन कहल गेल अछि ॥23॥

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥13-24॥

भावार्थ: एहि प्रकारे पुरुष केऔर गुण के सहित प्रकृति के जे मनुष्य तत्व सँ जनैत अछि (दृश्यमात्र सम्पूर्ण जगत मायाक काज भेला सँ क्षणभंगुर, नाशवान, जड़ और अनित्य अछि तथा जीवात्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी एवं शुद्ध, बोधस्वरूप, सच्चिदानन्दघन परमात्मे के सनातन अंश अछि, एहि प्रकारे बुझिकय सम्पूर्ण मायिक पदार्थक संग के सर्वथा त्याग कय कऽ परम पुरुष परमात्मे में एकीभाव सँ नित्य स्थित रहबाक नाम हुनका 'तत्व सँ बुझनाई' अछि) ओ सभ प्रकार सँ कर्तव्य कर्म करैत पुनः नई जन्मैत अछि ॥24॥



ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥13-25॥

भावार्थ: ओहि परमात्मा के कतेको मनुष्य तऽ शुद्ध भेल सूक्ष्म बुद्धि सँ ध्यान द्वारा हृदय में देखैत छथि, दोसर कतबो ज्ञानयोग सँ और कतबो कर्मयोग सँ देखैत छथि अर्थात पबैत छथि ॥25॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥13-26॥

भावार्थ: लेकिन एहि सँ अलग अर्थात जे मंदबुद्धिबला पुरुष छथि, ओ अहि प्रकारे नई जनैत दोसर सँ अर्थात तत्व के बुझाय बला पुरुष सँ सुनिये कय तदनुसार उपासना करैत छथि और ओ श्रवणपरायण पुरुष सेहो मृत्युरूपी संसार-सागर सँ निःसंदेह तरि जाइत छथि ॥26॥

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥13-27॥

भावार्थ: हे अर्जुन! यावत मात्र जतेको स्थावर-जंगम प्राणी उत्पन्न होइत छथि, हुनका सबके अहाँ क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोगे सँ उत्पन्न बुझू ॥27॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥13-28॥

भावार्थ: जे पुरुष नष्टो होइत सब चराचर भूत में परमेश्वर के नाशरहित और समभाव सँ स्थित देखैत अछि वैह यथार्थ देखैत अछि ॥28॥

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥13-29॥

भावार्थ: कियेक तऽ जे पुरुष सबमें समभाव सँ स्थित परमेश्वर के समान देखैत अपने द्वारा अपने के नष्ट नहि करैछ, अहिसँ ओ परम गति के पबैत अछि ॥29॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥13-30॥

भावार्थ: और जे पुरुष सम्पूर्ण कर्म के सब प्रकार सँ प्रकृतिये द्वारा कयल जाइत देखैत अछि और आत्मा के अकर्ता देखैत अछि, वैह यथार्थ देखैत अछि ॥30॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥13-31॥

भावार्थ: जाहि क्षण ई पुरुष भूत के पृथक-पृथक भाव के एकहि परमात्मा में स्थित तथा ओहि परमात्मे सँ सम्पूर्ण भूतक विस्तार देखैत अछि, ओहि क्षण ओ सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के प्राप्त भऽ जाइत छथि ॥31॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥13-32॥

भावार्थ: हे अर्जुन! अनादि भेला सँ और निर्गुण भेला सँ ई अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित भेला पर सेहो वास्तव में ने तऽ किछु करैत अछि आ ने लिप्ते होइत अछि ॥32॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥13-33॥

भावार्थ: जाहि तरहें सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म हेबाक कारण लिप्त नहि होइछ, ओहिना देह में सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण हेबाक कारण देह के गुण सँ लिप्त नहि होइछ ॥33॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥13-34॥

भावार्थ: हे अर्जुन! जाहि तरहें एकहि टा सूर्य अहि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रकाशित करैत अछि, ओहि तरहें एकहि टा आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र के प्रकाशित करैत अछि ॥34॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥13-35॥

भावार्थ: एहि तरहे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद के(क्षेत्र के जड़, विकारी, क्षणिक और नाशवान तथा क्षेत्रज्ञ के नित्य, चेतन, अविकारी और अविनाशी बुझनाईये 'ओकर भेद के बुझनाई' अछि) तथा कार्य सहित प्रकृति सँ मुक्त

हेबा के जे पुरुष ज्ञान चक्षु द्वारा तत्व सँ जनैत छथि, ओ महात्माजन परम ब्रह्म परमात्मा के पबैत छथि ॥35॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः

॥13॥

***

अथ चतुर्दशोऽध्याय

गुणत्रयविभागयोग



ज्ञानक महिमा और प्रकृति-पुरुष सँ जगतऽक उत्पत्ति

श्रीभगवानुवाच:

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानं मानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥14-1 ॥

भावार्थ: श्री भगवान बजलाह - हे अर्जुन ! समस्त ज्ञान सभ में सेहो सर्वश्रेष्ठ अहि परम-ज्ञान के हम अहाँ लेल फेर सँ कहैत छी, जेकरा बुझिकय सब संत-मुनि सब अहि संसार सँ मुक्त भऽ कय परम-सिद्धि के पओलन्हिअछि ॥1 ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥14-2 ॥

भावार्थ: एहि में स्थिर भऽ कय ओ मनुष्य हमरे जेहन स्वभाव के सेहो प्राप्त करैत अछि, ओ जीव ने तऽ सृष्टिक प्रारम्भ में फेर सँ उत्पन्ने होइत अछि आ ने प्रलयक समय में कखनो व्याकुल होइत अछि। ॥2 ॥

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥14-3 ॥

भावार्थ: हे भरतवंशी ! हमर ई आठों तत्व बला प्रकृतिये (जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार) समस्त वस्तु उत्पन्न करय बला योनि (माता) अछि आ हमही ब्रह्म (आत्मा) रूप में चेतन-रूपी बीया के

स्थापित करैत छी, अहि जड़-चेतन के संयोगे सँ सबटा चर-अचर प्राणीक जन्म सम्भव होइत अछि। ॥3 ॥

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥14-4 ॥

भावार्थ: हे कुन्तीपुत्र! समस्त योनि में जेहो शरीर धारण करय बला प्राणी उत्पन्न होइत अछि, ओहि सब के धारणे करय बाला जड़ प्रकृतिये माता अछि आ हमही ब्रह्म (आत्मा) रूपी बीया के स्थापित करय बला पिता छी। ॥4 ॥

***

सत्, रज, तम- तीनों गुणों का विषय

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥14-5 ॥

भावार्थ: हे महाबाहु अर्जुन! सात्विक गुण, राजसिक गुण और तामसिक गुण ई तीनू गुण भौतिक प्रकृतिये सँ उत्पन्न होइत अछि, प्रकृति सँ उत्पन्न ई तीनू गुणक कारणे अविनाशी जीवात्मा शरीर में बन्हि जाइत अछि। ॥5 ॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥14-6 ॥

भावार्थ: हे निष्पाप अर्जुन! सतोगुण अन्य गुणक अपेक्षा बेसी शुद्ध हेबाक के कारण पाप-कर्म सँ जीव के मुक्त कयकें आत्मा के प्रकाशित करय बला होइत अछि, जाहि सँ जीव सुख और ज्ञानक अहंकार में बन्हि जाइत अछि। ॥6 ॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥14-7 ॥

भावार्थ: हे कुन्तीपुत्र! रजोगुणक कामना आ लोभक कारण उत्पन्न भेल बुझ्, जाहि कारण सँ शरीरधारी जीव सकाम-कर्म (फलक आसक्ति) में बन्हि जाइत अछि। ॥7 ॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥14-8 ॥

भावार्थ: हे भरतवंशी! तमोगुण शरीरक प्रति मोह के कारण अज्ञान सँ उत्पन्न भेल बुझ्, जाहि कारण सँ जीव प्रमाद (पागलपन में व्यर्थ के काज करबाक प्रवृत्ति), आलस्य (आजुक काज के काल्हि पर टारबाक प्रवृत्ति) और निद्रा (अचेत अवस्था में काज नहि करबाक प्रवृत्ति) सँ बन्हि जाइत अछि। ॥8 ॥

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥14-9 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! सतोगुण मनुष्य के सुख में बन्हैत अछि, रजोगुण मनुष्य के सकाम कर्म में बन्हैत अछि और तमोगुण मनुष्य के ज्ञान के झाँपि कय प्रमाद में बन्हैत अछि। ॥9॥

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥14-10॥

भावार्थ: हे भरतवंशी अर्जुन! रजोगुण और तमोगुण के कम भेला पर सतोगुण बढ़ैत अछि, सतोगुण और रजोगुण के कम भेला पर तमोगुण बढ़ैत अछि, एहि प्रकारे तमोगुण और सतोगुण के कम भेला पर तमोगुण बढ़ैत अछि। ॥10॥

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥14-11॥

भावार्थ: जाहि समय में एहि शरीरक सबटा नौ द्वार (दू टा आँखि , दू टा कान, दू टा नासिका, मुख, गुदा और उपस्थ) में ज्ञानक प्रकाश उत्पन्न होइत अछि, ओहि समय में सतोगुण में विशेष बृद्धि होइत अछि। ॥11॥

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥14-12॥

भावार्थ: हे भरतवंशी में श्रेष्ठ! जखन रजोगुण में विशेष बृद्धि होइत अछि तखन लोभ के उत्पन्न होयबाक कारण फलक इच्छा सँ काज करबाक और मोनक चंचलता के कारण विषय-भोग के भोगबाक अनन्य ईक्षा बढ़य लगैत अछि। ॥12॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ 14-13॥

भावार्थ: हे कुरुवंशी अर्जुन! जखन तमोगुण में विशेष बृद्धि होइत अछि तखन अज्ञान रूपी अन्हार, कर्तव्य-कर्म के नई करबाक प्रवृत्ति, पागलपनक अवस्था और मोह के कारण नई करबा योग्य काज करबाक प्रवृत्ति बढ़य लगैत अछि। ॥13॥

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥14-14॥

भावार्थ: जखन कोनो मनुष्यक सतोगुण में वृद्धि होयबाक चलते ओकर मृत्यु होइत छैक, तखन ओहि उत्तम कर्म करय बला के निर्मल स्वर्ग लोक भेटैत अछि। ॥14॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥14-15॥

भावार्थ: जखन कोनो मनुष्यक मृत्यु रजोगुणक बृद्धि भेला सँ होइत अछि तखन वैह सद्कर्म करय बला मनुष्य के रूप में जन्म लेत अछि और ओहिना जाकर मृत्यु तमोगुणक बृद्धि भेला पर होइत अछि ओकर जन्म पशु-पक्षी आदि निम्न योनि में होइत अछि। ॥15॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥14-16॥

भावार्थ: सतोगुण में केल गेल कर्म के फल सुख और ज्ञान युक्त निर्मल फल कहल गेल अछि, रजोगुण में केल गेल कर्म के फल दुःख कहल गेल अछि, और तमोगुण में केल गेल कर्म के फल अज्ञान कहल गेल अछि। ॥16॥

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥14-17॥

भावार्थ: सतोगुण सँ वास्तविक ज्ञान उत्पन्न होइत अछि, रजोगुण सँ निश्चित रूप सँ लोभे उत्पन्न होइत अछि और तमोगुण सँ निश्चित रूपेण प्रमाद, मोह, अज्ञाने टा उत्पन्न होइत अछि। ॥17॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥14-18॥

भावार्थ: सतोगुण में स्थित जीव स्वर्ग सन उच्च लोक में जाइत छथि, रजोगुण में स्थित जीव मध्य में पृथ्वीये-लोक में रहि जाइत छथि और

तमोगुण में स्थित जीव पशु आदि नीच योनि में अर्थात नर्क में जाइत छथि। ॥18॥

***

भगवत्प्राप्तिक उपाय और गुणातीत पुरुषक लक्षण

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥14-19॥

भावार्थ: जखन कोनो प्रकृतिक तीनू गुण के अलावा कोनो दोसर कर्ता के नहि देखैत अछि और स्वयं के द्दष्टा रूप सँ देखैत अछि तखन ओ तीनू गुण सँ अलग हमरा सन परमात्मा के बुझिकय हमर दिव्य स्वभाव के प्राप्ति करैत अछि। ॥19॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥14-20॥

भावार्थ: जखन शरीरधारी जीव प्रकृति के एहि तीनू गुण के पार कऽलैत अछि तखन ओ जन्म, मृत्यु, बुढापा तथा सभ तरहक कष्ट सँ मुक्त भऽअहि जीवन में परम-आनन्द स्वरूप अमृत के भोग करैत अछि। ॥20॥

अर्जुन उवाच:

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥14-21॥

भावार्थ: अर्जुन पुछलखिन - हे प्रभु ! प्रकृति के तीनू गुण के पार कयल गेल मनुष्य के चिन्हबाक लक्षण की अछि आ ओकर आचरण केहन होइत अछि और ओ मनुष्य प्रकृतिक एहि तीनू गुण के कोण तरहें पार कऽ पबैत अछि? ॥21॥

श्रीभगवानुवाच:

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥14-22॥

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथिन - जे मनुष्य ईश्वरीय ज्ञान रूपी प्रकाश (सतोगुण) तथा कर्म करबा में आसक्ति (रजोगुण) तथा मोह रूपी अज्ञान (तमोगुण) के बढ़लो पर कखनो हुनका सँ घृणा नई करैत अछि तथा समान भाव में स्थित रहिकय ने तऽ ओहिमे प्रवृते होइत अछि आ ने ओहि सँ निवृते होयबाक इक्षा रखैत अछि ।॥22॥

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥14-23॥

भावार्थ: जे उदासीन भाव में स्थित रहिकय कोनो गुण के अयबा-जेबा सँ विचलित नई होइत अछि और ओहि गुण के काज बुझिकय करैत एकहि भाव में स्थिर रहैत अछि। ॥23॥

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥14-24॥

भावार्थ: जे सुख आ दुख में समान भाव में स्थित रहैत अछि, जे अपने आत्म-भाव में स्थित रहैत अछि, जे माँटि, पाथर और सोना के एकहि समान बुझैत अछि, जकरा लेल ने तऽ कियो प्रिय आ ने कियो अप्रिये होइत अछि आ ने जे निदा आ ने स्तुति में अपन धीरज नई छोड़ैत अछि। ॥24॥

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः सा उच्यते ॥14-25॥

भावार्थ: जे मान और अपमान के एक समान बुझैत अछि, जे मित्र और शत्रु के पक्ष में समान भाव में रहैत अछि आ जकरा में सब कर्म करितो कर्तापनक भाव नई रहैत अछि, एहन मनुष्य के प्रकृति के गुण सँ अतीत कहल जाइत अछि। ॥25॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्येतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥14-26॥

भावार्थ: जे मनुष्य सभ परिस्थिति में बिना विचलित भेने अनन्य-भाव सं हमरा भक्ति में स्थिर रहैत अछि, ओ भक्त प्रकृति के तीनू गुण के पार कय अति शीघ्र ब्रह्म पद के पाबि लैत अछि। ॥26॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥14-27॥

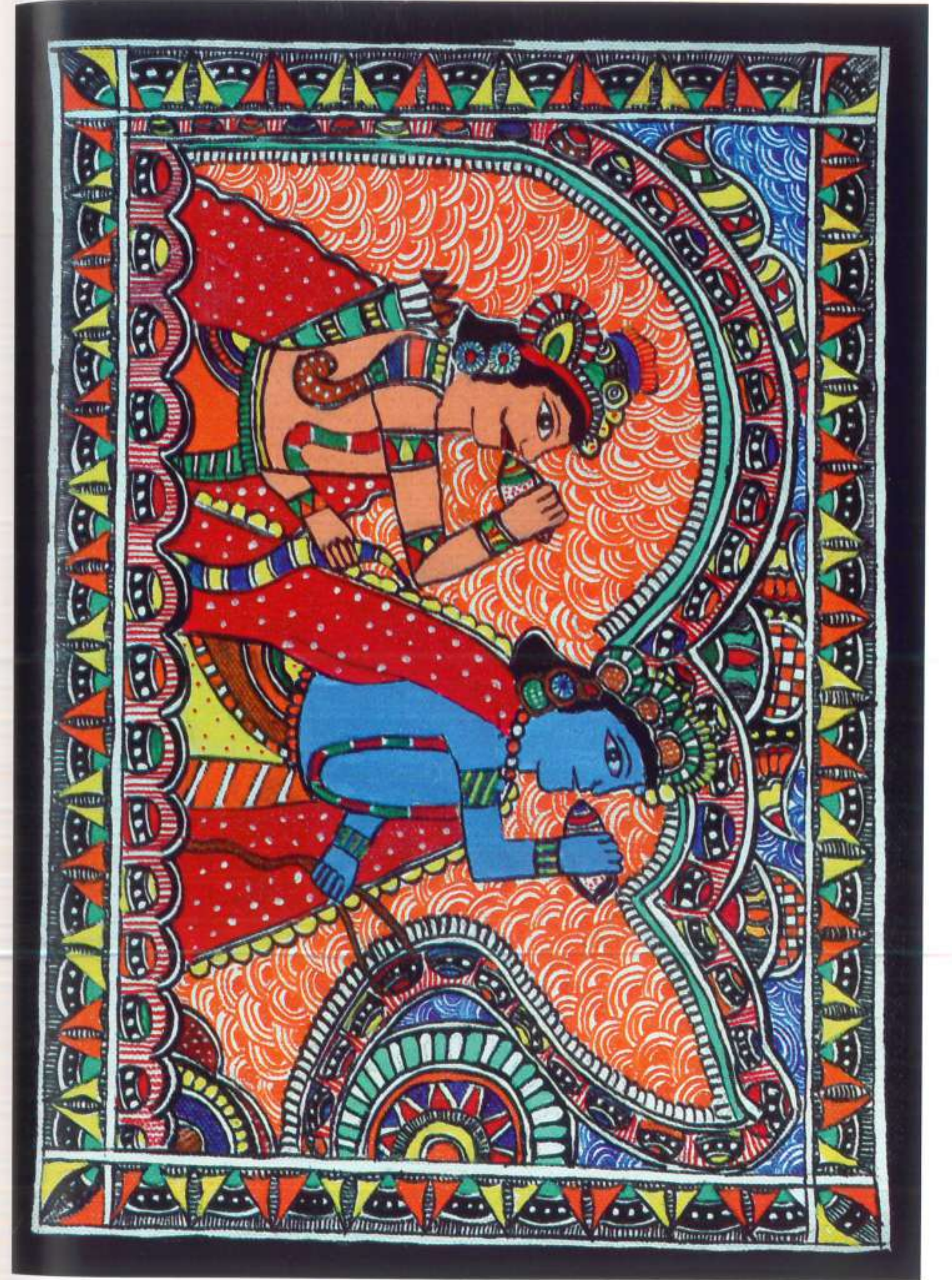
भावार्थ: ओहि अविनाशी ब्रह्म-पद के हमही अमृत स्वरूप, शाश्वत स्वरूप, धर्म स्वरूप और परम-आनन्द स्वरूप के एक-मात्र आश्रय छी। ॥ 27 ॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे प्राकृतिकगुणविभागयोगो नामचतुर्दशोऽध्यायः

॥ 14 ॥

***



अथ पञ्चदशोऽध्याय

पुरुषोत्तमयोग



संसाररूपी अश्वत्वृक्षक स्वरूप और भगवत्प्राप्तिक उपाय

श्रीभगवानुवाच:

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।।15.1।।

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथिन- हे अर्जुन! एहि संसार के अविनाशी गाछ कहल गेल अछि, जेकर जैड़ ऊपर दिस अछि आ ठाढ़ि नीचाँ दिस आ गाछ के पात वैदिक स्तोत्र अछि, जे अहि अविनाशी गाछ के जनैत अछि वैह वेदक ज्ञाता अछि।।।1।।

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।।15.2।।

भावार्थ: एहि संसार रूपी गाछक समस्त योनि रूपी शाखा नीचाँ आ ऊपर सभ दिस पसरल अछि, एहि गाछक ठाढ़ि प्रकृतिक तीनू गुण सँ विकसित होइत अछि, एहि गाछक इन्द्रिय-विषय रूपी कोपर अछि, एहि गाछक जरिक पसर निचो दिस सेहो होइत अछि जे सकाम-कर्म रूप सँ मनुष्यक लेल फल रूपी बन्धन उत्पन्न करैत अछि।।2।।

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।।15.3।।

भावार्थ: एहि संसार रूपी गाछ के वास्तविक स्वरूपक अनुभव एहि जगत में नई कयल जा सकैछ कियेक कि ने तऽ एकर आदि छैक आ ने एकर

अन्ते छैक और ने एकर कोनो आधारे छैक, बहुत दृढता सँ ठाढ़ एहि गाछ के खाली वैराग्य रूपी हथियार सँ काटल जा सकैत छैक ।।3।।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।15.4।।

भावार्थ: वैराग्य रूपी हथियार सँ कटलाक बाद मनुष्य के ओहि परम-लक्ष्य (परमात्मा) के मार्गक खोज करबाक चाही, जाहि मार्ग पर पहुँचल मनुष्य अहि संसार में फेर कखनो घुरि कय नई अबैत अछि, फेर मनुष्य के ओहि परमात्माक शरणागत भऽ जेबाक चाही, जाहि परमात्मा सँ अई आदि-रहित संसार रूपी गाछक उत्पत्ति और विस्तार होइत अछि।।4।।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषाअध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसञ्ज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।15.5।।

भावार्थ: जे मनुष्य मान-प्रतिष्ठा और मोह सँ मुक्त अछि तथा जेकर सांसारिक विषय में लिप्त मनुष्यक संगति के त्यागि देने अछि, जे निरन्तर परमात्म स्वरूप में स्थित रहैत अछि, जेकर सांसारिक कामना पूर्ण रूपेण समाप्त भऽ चुकल अछि और जेकर सुख-दुःख नामक भेद समाप्त भऽ गेल अछि एहन मोह सँ मुक्त भेल मनुष्य ओहि अविनाशी परम-पद (परम-धाम) के पबैत छथि।।5।।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।15.6।।

भावार्थ: ओहि परम-धाम के ने तऽ सूर्य प्रकाशमान करैत अछि, ने चन्द्रमा प्रकाशमान करैत अछि आ ने आगिये प्रकाशमान करैत अछि, जतय पहुँचिकय कोनो मनुष्य अई संसार में घुरि कऽ नई अबैत अछि वैह हमर परम-धाम अछि ।। 6 ।।

***

इश्वरांश जीव, जीव तत्व के ज्ञाता और अज्ञाता

श्रीभगवानुवाच:

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।15.7।।

भावार्थ: हे अर्जुन! संसार में प्रत्येक शरीर में स्थित जीवात्मा हमरे सनातन अंश अछि, जे कि मोन सहित छऽ टा इन्द्रिय सँ प्रकृति के अधीन भऽकाज करैत अछि ॥ 7 ॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ 15.8 ॥

भावार्थ: शरीरक स्वामी जीवात्मा छओ टा इन्द्रिय के काज के संस्कार रूप में ग्रहण कय कऽ शरीर के त्यागि दोसर शरीर में ओहिना चलि जाइत अछि जेना वायु गन्ध के एक ठाम सँ ग्रहण कय दोसर ठाम लऽ जाइत अछि ।। 8 ।।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।।15.9।।

भावार्थ: एहि तरहें दोसर शरीर में स्थित भऽ जीवात्मा कान, आँखि, चाम, जीह, नाक आ मोनक सहायता सँ विषयक भोग करैत अछि।।9।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।15.10।।

भावार्थ: जीवात्मा शरीर के कोना त्याग कय सकैत अछि, कोना शरीर में स्थित रहैत अछि और कोना प्रकृतिक गुणक अधीन भऽ विषयक भोग करैत अछि, मूर्ख मनुष्य कखनो एहि प्रक्रिया के देखि नई पबैत अछि खाली वैह मनुष्य देखि पबैत अछि जिनकर आँखि ज्ञानक प्रकाश सँ प्रकाशमान भऽ गेल छन्हि। ।।10।।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः।।15.11।।

भावार्थ: योगक अभ्यास में प्रयत्नशील मनुष्ये टा अपन हृदय में स्थित अहि आत्मा के देख सकैत छथि, परञ्च जे मनुष्य योगक अभ्यास में नई लागल छथि ओहन अज्ञानी मनुष्य प्रयत्न कयलाक उपरान्तो आत्मा नहि देखि पबैत छथि ।।11।।

* * *

प्रभाव सहित परमेश्वर के स्वरूपक वर्णन

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।15.12।।

भावार्थ: हे अर्जुन! जे प्रकाश सूर्य में व्याप्त अछि जाहि सँ समस्त संसार प्रकाशमान होइत अछि, जे प्रकाश चन्द्रमा में व्याप्त अछि आ जे प्रकाश आगि में व्याप्त अछि, अहाँ ई बुझू जे ओ प्रकाश हमरे सँ उत्पन्न होइत अछि ।।12।।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।15.13।।

भावार्थ: हमही सब लोक में प्रवेश कय अपन शक्ति सँ सभ टा जीव के धारण करैत छी और हमही चन्द्रमाक रूप सँ वनस्पति में जीवन-रस बनिकय समस्त जीवक पोषण करैत छी।।13।।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।15.14।।

भावार्थ: हमही पाचन-अग्निक रूप में समस्त जीवक शरीर में व्याप्त रहैत छी, हमही प्राण वायु और अपान वायु के संतुलित रखैत चारि तरहक (चिबाबय बला , पीबय बला, चाटय बला आ चूसय बला)अन्न के पचबैत छी।।14।।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टोमत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्योवेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।।15.15।।

भावार्थ: हमही समस्त जीवक हृदय में आत्माक रूप में व्याप्त छी, हमरे सँ जीव के वास्तविक स्वरूपक स्मृति, विस्मृति और ज्ञान होइत अछि, हमही समस्त वेद के माध्यमे बुझबा योग्य छी, हमरे सँ समस्त वेद उत्पन्न होइत अछि और हमही समस्त वेद के बुझय बला छी ।।15।।

***

क्षर, अक्षर, पुरुषोत्तम का विश्लेषण

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।15.16।।

भावार्थ: हे अर्जुन! संसार में दू तरहक जीव होइत अछि एकटा नाशवान (क्षर) आ दोसर अविनाशी (अक्षर), अहि में समस्त जीवक शरीर तऽ नाशवान होइत अछि आ ओकर आत्मा के अविनाशी कहल जाइत अछि।।16।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।15.17।।

भावार्थ: परञ्च एहि दुनू सँ अलग एकटा श्रेष्ठ पुरुष अछि जकरा परमात्मा कहल जाइत अछि, ओ अविनाशी भगवान तीनू लोक में जा कय सभ

जीवक भरण पोषण करैत अछि ।।17।।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।15.18।।

भावार्थ: कियेक तऽ हमही क्षर और अक्षर दुनू सँ अलग व्याप्त सर्वोत्तम छी, ताहि लेल संसार तथा वेद में पुरुषोत्तम रूप में विख्यात छी।।18।।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ।।15.19।।

भावार्थ: हे भरतवंशी अर्जुन! जे मनुष्य एहि तरहे हमरा संशय-रहित भऽ भगवान बुझैत अछि, ओ मनुष्य हमरे सभ किछु बुझिकय सब तरहें हमरे भक्ति करैत अछि।।19।।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ।।15.20।।

भावार्थ: हे निष्पाप अर्जुन! एहि तरहें ई शास्त्रक अति गोपनीय रहस्य हमरा माध्यम सँ कहल गेल अछि, हे भरतवंशी जे मनुष्य अई परम-ज्ञान के एहि तरहें बुझैत अछि ओ बुद्धिमान भऽ जाइत अछि आ ओकर सब टा प्रयास पूर्ण भऽ जाइत अछि।।20।।

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुन संवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥15॥

***

अथ षोडशोऽध्याय

दैवासुरसम्पद्विभागयोग



फलसहित दैवी और आसुरी संपदाक कथन

श्रीभगवानुवाच:

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥ 16.1॥

भावार्थ: श्री भगवान कहैत छथिन- भयक सर्वथा अभाव, अन्तःकरणक पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञान के लेल ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति (परमात्माक स्वरूप के तत्त्व सँ बुझबाक लेल सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में एकी भाव सँ ध्यानक निरन्तर गाढ़ स्थितियेके नाम 'ज्ञानयोगव्यवस्थिति' बुझबाक चाही) और सात्त्विक दान (गीता अध्याय 17 श्लोक 20 के देखी जाहिमे एकर वर्णन विस्तार सँ कयल गेल अछि), इन्द्रियक दमन, भगवान, देवता और गुरुजनक पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मक आचरण आ वेद-शास्त्रक पठन-पाठन तथा भगवानक नाम और गुणक कीर्तन, स्वधर्मक पालन हेतु कष्टक सहन और शरीर तथा इन्द्रिय के सहित अन्तःकरणक सरलता॥1॥

अहिसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥16.2॥

भावार्थ: मोन, वाणी और शरीर सँ कोनो तरहें ककरो कष्ट नहि देनाइ, यथार्थ और प्रिय भाषण (अन्तःकरण और इन्द्रिय के माध्यम सँ जेहन निश्चय कयने हो, ओहन-के-ओहने प्रिय शब्द में कहबाक नाम 'सत्यभाषण' अछि), अपन अपकार करय बला पर सेहो क्रोध नहि एनाइ,

कर्म में कर्तापन के अभिमानक त्याग, अन्तःकरणक उपरति अर्थात् चित्तक चञ्चलताक अभाव, ककरो निंदा सेहो नई कयनाइ, सब टा भूतप्राणी में हेतुरहित दया, इन्द्रियक विषय के संग संयोग भेला पर सेहो हुनका में आसक्ति का नहि भेनाइ, कोमलता, लोक और शास्त्र सँ विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाक अभाव ॥2 ॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥16.3 ॥

भावार्थ: तेज (श्रेष्ठ पुरुषक ओहि शक्तिक 'तेज' अछि जेकर प्रभाव सँ हुनका सामने विषयासक्त और नीच प्रकृति बला मनुष्य सेहो प्रायः अन्यायाचरण सँ रुकिकय हुनकर कथनानुसार श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त भऽ जाइत अछि), क्षमा, धैर्य, बाहरक शुद्धि (गीता अध्याय 13 श्लोक 7 के देखी) एवं ककरो में शत्रुभाव के सेहो नहि भेनाइ और अपना आप में पूज्यताक अभिमानक अभाव- ई सब तऽ हे अर्जुन! दैवीय सम्पदा के लय कऽ उत्पन्न भेल पुरुषक लक्षण अछि ॥3 ॥

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥16.4 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञानता सेहो - ई सब आसुरी सम्पदा के लय कऽ उत्पन्न भेल पुरुषक लक्षण अछि ॥4 ॥

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ 16-5 ॥

भावार्थ: दैवीय सम्पदाक मुक्ति के लेल और आसुरी सम्पदा के बन्हबाक लेल मानल गेल अछि। ताहि दुआरे अर्जुन! अहाँ शोक नहि करू, किएक तऽ अहाँ दैवीय सम्पदा लय कऽ उत्पन्न भेल छी ॥ 5 ॥

* * *

आसुरी संपदा बलाक लक्षण औरओकर अधोगतिक कथन

द्वौ भूतसर्गौ लोकऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ में श्रृणु ॥ 16-6 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! एहि लोक में भूतक सृष्टि यानी मनुष्य समुदाय दुइये तरहक अछि, एक तऽ दैवीय प्रकृति बला आ दोसर आसुरी प्रकृति बला। ओहिमे सँ दैवीय प्रकृति बला तऽ विस्तार सँ कहल गेल, आब अहाँ आसुरी प्रकृति बला मनुष्यक समुदाय के सम्बन्ध में सेहो विस्तार सँ हमरा सँ सुनु ॥6 ॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ 16-7 ॥

भावार्थ: असुर स्वभाव बला मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति- एहि दुनू के जनिते नहि अछि। ताहि लेल हुनका में ने तऽ बाहर-भीतर शुद्ध छन्हि, ने श्रेष्ठ आचरण छन्हि आ ने भाषणे सत्य छन्हि ॥ 7 ॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥ 16-8॥

भावार्थ: ओ आसुरी प्रकृति बला मनुष्य कहैत रहैत छथि जे जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वर के, अपने-आप खाली स्त्री-पुरुषक संयोग सँ उत्पन्न भेल अछि, तेँ हेतु खाली कामे टा एकर कारण अछि। एकरा अलावा और की अछि? ॥8॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥16-9॥

भावार्थ: एहि मिथ्या ज्ञान के अवलम्बन कय - जिनकर स्वभाव नष्ट भऽ गेल छन्हि तथा जिनकर बुद्धि मन्द छन्हि, ओ सब अपकार करय बला क्रुरकर्मी मनुष्य खाली जगतक नाशे के लेल समर्थ होइत छथि॥ 9॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः॥16-10॥

भावार्थ: ओ दम्भ, मान और मद सँ युक्त मनुष्य कोनो तरहेँ पूर्ण नहि होबय बला कामनाक आश्रय लय क, अज्ञानता सँ मिथ्या सिद्धांतक ग्रहण कय भ्रष्ट आचरण के धारण कय संसार में विचरैत छथि ॥ 10॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥ 16-11॥

भावार्थ: तथा ओ मृत्युपर्यन्त रहबा बला असंख्य चिन्ताक आश्रय लेबय



बला, विषयभोग के भोगबा में तत्पर रहय बला 'एतबे टा सुख छैक' एहि तरहें मानय बला होइत छथि ॥ 11 ॥

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥ 16-12 ॥

भावार्थ: ओ आशाक सय टा फाँस सँ बान्हल मनुष्य काम-क्रोधक परायण भऽ विषय भोग के लेल अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थक संग्रह करबाक चेष्टा करैत छथि ॥12 ॥

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ 16.13 ॥

भावार्थ: ओ सोचैत छथि जे आई हमरा ई चीज भेट गेल अछि और आब एहि मनोरथ के सेहो पाबि लेब । हमरा लग एतेक धन अछि आ फेरो ई भऽ जायत ॥13 ॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ 16-14 ॥

भावार्थ: ओहि शत्रु के हमहि मारलियैक आ बाँकी दोसर शत्रु सब के सेहो हम मारि देबैक । हम भगवान छी, ऐश्र्वर्य के भोगय बला छी । हम सब टा सिद्धि सँ युक्त छी और बलवान् तथा सुखी छी ॥14 ॥

आढयोऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ 16-15 ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥16.16॥

भावार्थ: हम बहुत धनीक आ पैघ कुटुम्ब बला छी। हमरा जकाँ दोसर के अछि? हम यज्ञ करब, दान देब आ आमोद-प्रमोद करब। एहि तरहें अज्ञानता सँ मोहित रहय बला तथा अनेको तरह सँ भ्रमित चित्त बला मोहरूपी जाल सँ समावृत और विषयभोग में अत्यन्त आसक्त असुर सब महान् अपवित्र नर्क में खसैत छथि ॥15-16॥

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥16.17॥

भावार्थ: ओ अपनहि-आपके पैघ बुझाय बला घमंडी पुरुष धन और मान के मद सं युक्त भऽ खाली नामक लेल पाखण्ड सँ शास्त्र विधि रही यज्ञ करैत छथि ॥17॥

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥16.18॥

भावार्थ: ओ हंकार, बल, घमण्ड, कामना और क्रोधादिक परायण और दोसराक निन्दा करय बाला पुरुष अप्पन आ दोसराक देह व्याप्त रहय हमरा सं अन्तर्यामी सँ करैत रहैत छथि ॥18॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥16.19॥

भावार्थ: ओहन द्वेष करय बला पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधम के हम संसार में बेर-बेर आसुरी योनिये में पठबैत छियनि ॥19॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥16.20॥

भावार्थ: हे अर्जुन! ओ मूढ़ लोकनि हमरा नई पाबि जन्म-जन्म में आसुरी योनि के पबैत छथि, फेर ओहू सऽ नीच गति पबैत छथि अर्थात नर्क में पड़ल रहैत छथि ॥20॥

* * *

शास्त्रविपरीत आचरणों के त्यागनाई और शास्त्रानुकूल आचरण के लेल प्रेरणा

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥16.21॥

भावार्थ: काम, क्रोध तथा लोभ- ये तीन प्रकारक नरक के द्वार आत्माक नाश करय बला अर्थात् ओकरा अधोगति में लय जाइ बला अछि। अतः एहि तीनू के त्यागि देबाक चाही ॥21॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥16.22॥

भावार्थ: हे अर्जुन! ई तीनू नर्क के द्वार सँ मुक्त पुरुष अपन कल्याण के लेल आचरण करैत अछि, जाहि सँ हुनका परमगति भेटैत छनि अर्थात ओ हमरा पाबि लैत अछि ॥22॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥16.23॥

भावार्थ: जे पुरुष शास्त्र विधि के त्यागिकय अपन इक्षा सँ मनमानी कय आचरण करैत अछि, ओकरा ने सिद्धिये भेटैत छैक, ने परमगति आ ने कोनो सुखे भेटैत छैक ॥23॥

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥16.24॥

भावार्थ: ;ताहिलेल अहाँ अपन एहि कर्तव्य और अकर्तव्य के व्यवस्थाक प्रमाण शास्त्रे में अछि। यहां बुझिकय अहाँ शास्त्र विधि सँ नियत कर्मे करबा योग्य छी ॥24॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥16॥

***

अथ सप्तदशोऽध्याय

श्रद्धात्रयविभागयोग



श्रद्धा और शास्त्र के विपरीत घोर तप करय बलाक विषय

अर्जुन उवाच:

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः।।17.1।।

भावार्थ: अर्जुन बजलाह - हे कृष्ण! जे मनुष्य शास्त्र विधि के त्यागिकय श्रद्धा सँ युक्त भऽ देवादिदेवक पूजा करैत छथि, फेर हुनकरकी स्थिति अछि? सात्विकी अथवा राजसी वा तामसी अछि? ।।17.1॥

श्रीभगवानुवाच:

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां श्रृणु।।17.2।।

भावार्थ: श्री भगवान् बजलाह - मनुष्य सबहक ओ शास्त्रीय संस्कार सँ रहित खाली स्वभाव सँ उत्पन्न भेल श्रद्धा (अनन्त जन्म में कयल गेल के कर्मक सञ्चित संस्कार सँ उत्पन्न भेल श्रद्धा "स्वभावजा" श्रद्धा कहल जाइत अछि) सात्त्विकी और राजसी तथा तामसी- एहन तीनू तरहक होइत अछि। ओकरा अहाँ हमरा सँ सुनु ।।17.2॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।17.3।।

भावार्थ: हे भारत! सब मनुष्यक श्रद्धा हुनकर अन्तःकरण के अनुरूप होइत

अछि। ई पुरुष श्रद्धामय अछि, तैं हेतु जे पुरुष जेहेन श्रद्धाबला अछि, ओ स्वयँ सेहो वैह अछि ।।17.3॥

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये जयन्ते तामसा जनाः।।17.4।।

भावार्थः सात्त्विक पुरुष देव लोकनिक पूजा करैत छथि, राजस पुरुष यक्ष और राक्षसक तथा अन्य जे तामसिक प्रवृतिक मनुष्य छथि, ओ प्रेत और भूतगणक पूजा करैत छथि ।।17.4॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः।।17.5।।

भावार्थः जे मनुष्य शास्त्र विधि सँ रहित खाली मनःकल्पित घोर तप करैत छथि तथा दम्भ और अहंकार सँ युक्त एवं कामना, आसक्ति और बलक अभिमान सँ सेहो युक्त छथि ।।17.5॥

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्।।17.6।।

भावार्थः जे शरीर रूप सँ व्याप्त भूत समुदाय के आ अपना अन्तःकरण में व्याप्त परमात्मा सँ सेहो क्लेश करय बला छथि, ओहि अज्ञानी लोकनि के अहाँ असुर स्वाभाव बला बुझू ।।17.6॥

***

आहार, यज्ञ, तप और दानक अलग-अलग भेद

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं श्रृणु।।17.7॥

भावार्थः भोजन सेहो सबकें अप्पन-अप्पन प्रकृतिक हिसाबें तीन तरह सँ प्रिय होइत अछि। और ओहिना यज्ञ, तप और दान सेहो तीन-तीन तरहक होइत अछि। ओकर अलग-अलग भेद के अहाँ हमरा सँ सुनु।।17.7॥

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ 17.8 ॥

भावार्थः आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति के बढ़बय बला, रसयुक्त, स्निग्ध और स्थिर रहय बला (जाहि भोजनक सार शरीर में बहुत काल तक रहैत अछि, ओकरा स्थिर रहय बला कहल जाइत छैक)तथा स्वभावे सँ मन के प्रिय- एहन आहार अर्थात् भोजन करबाक चीज सात्त्विक पुरुष के प्रिय होइत छन्हि ।।17.8॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।।17.9।।

भावार्थः तीत, खट्टा, नुनगर, बहुत गरम, कड़ु, सुखायल, दाहकारक और दुःख, चिन्ता तथा रोग के उत्पन्न करय बला आहार अर्थात् भोजन करबाक चीज राजसी पुरुष के प्रिय होइत छन्हि ।।17.9॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।17.10।।

भावार्थ: जे भोजन अधपक्क, बिना रसक, दुर्गन्धयुक्त, बसिया आ उच्छिष्ट अछि तथा अपवित्र सेहो अछि, ओ भोजन तामसी पुरुष के प्रिय होइत अछि ।।17.10॥

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः।।17.11।।

भावार्थ: शास्त्र विधि सँ कहल गेल, यज्ञ केनाइ हमर कर्तव्य अछि- एहि तरहें मोन के मना कय, फल के इक्षा नई राखय बला पुरुषक द्वारा कयल जाइत अछि, ओ सात्त्विक अछि।।17.11॥

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्।।17.12।।

भावार्थ: परञ्च हे अर्जुन! खाली दम्भाचरण के लेल वा फल के सेहो दृष्टि में राखिकय जे यज्ञ कयल जाइत अछि, ओहि यज्ञ के अहाँ राजसी बुझू ।।17.12॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते।।17.13।।

भावार्थ: शास्त्रविधि सँ हीन, अन्नदान सँ रहित, बिना मन्त्र के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के लेल करय बला यज्ञ के तामसी यज्ञ कहाइत अछि ।।17.13॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।17.14।।

भावार्थ: देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनक पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा- ई शरीर- सम्बन्धी तप कहल जाइत अछि ।।17.14॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।17.15।।

भावार्थ: जे उद्वेग नई करय बला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण अछि तथा जे वेद-शास्त्र के पढ़ि कय एवं परमेश्वरक नाम-जप के अभ्यासी अछि-ओकरे वाणी-सम्बन्धी तप कहल जाइत अछि ।।17.15॥

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।17.16।।

भावार्थ: मोनक प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करबाक स्वभाव, मोनक निग्रह और अन्तःकरण के भाव के खूब बढियाँ सँ पवित्र कय, एहि तरहें कयल गेल तप के मोन सम्बन्धी तप कहल जाइत अछि ।।17.16॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।।17.17।।

भावार्थ: फल के आशा नई राखय बला योगी पुरुष द्वारा परम श्रद्धा सँ कयल गेल ओहि तीन तरहक तप के सात्त्विक कहल जाइत अछि ।।17.17॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।17.18।।

भावार्थ: जे तप सत्कार, मान और पूजाक लेल तथा दोसर कोनो स्वार्थक लेल सेहो स्वभाव सँ वा पाखण्ड सँ कयल जाइत अछि, ओ अनिश्चित एवं क्षणिक फलदायी वाला तप के राजसी कहल गेल अछि ।।17.18॥

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्।।17.19।।

भावार्थ: जे तप मूढ़ता आ हठ सँ, मोन, वाणी और शरीरक कष्ट सहित अथवा दोसराक अनिष्ट करबा लेल कयल जाइत अछि - ओहि तप के तामसी कहल गेल अछि ।।17.19॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।17.20।।

भावार्थ: दान देनाई कर्तव्य अछि - एहेन भाव सँ जे दान देश तथा काल और पात्र के पओला पर उपकार नै करय बलाक प्रति देल जाइत अछि, ओहि दान के सात्त्विक कहल गेल छैक ।।17.20॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्।।17.21।।

भावार्थ: परञ्च जे दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकारक प्रयोजन सँ वा फल के ध्यान में नहि राखिकय फेर देल जाइत अछि, ओहि दान के राजसी कहल गेल अछि ।।17.21॥

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्।।17.22।।

भावार्थ: जे दान बिना सत्कार के अथवा तिरस्कार सँ अयोग्य देश-काल में और कुपात्र के प्रति देल जाइत अछि, ओहन दान के तामसी कहल गेल अछि ।।17.22॥

***

ॐ तत्सत् के प्रयोग की व्याख्या

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।।17.23।।

भावार्थ: ॐ, तत्, सत्-ऐना ई तीन प्रकारक सच्चिदानन्दघन ब्रह्मक नाम कहल गेल अछि, ओही सँ सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचल गेल ।।17.23॥

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्तः सततं ब्रह्मवादिनाम्।।17.24।।

भावार्थ: ताहि लेल वेद-मन्त्रक उच्चारण करय बला श्रेष्ठ पुरुष के शास्त्र विधि सँ कहल गेल यज्ञ, दान और तपरूपी क्रिया सदिखन 'ॐ' एहि परमात्मा के नामक उच्चारण कईये कऽ शुरू होइत अछि ।।17.24॥

तदित्यनभिसन्दाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्चविविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः।।17.25।।

भावार्थ: तत् अर्थात् 'तत्' नाम सँ कहल जाइ बला परमात्मे के ई सब छनि - एहि भाव सँ फल के आशा नहि राखिकय अनेक तरहक यज्ञ, तपरूपी क्रिया तथा दानरूपी क्रिया कल्याणक इक्षा बला पुरुष द्वारा कयल जाइत अछि ।।17.25॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्यतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।।17.26।।

भावार्थ: 'सत्'- एहि तरहें अई परमात्माक नाम सत्यभाव में और श्रेष्ठभाव में प्रयोग कयल जाइत अछि हे पार्थ! उत्तम कर्म में सेहो 'सत्' शब्दक प्रयोग कयल जाइत अछि ।।17.26॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्यवाभिधीयते।।17.27।।

भावार्थ: तथा यज्ञ, तप और दान में जे व्याप्त अछि, ओ सेहो 'सत्' एहि तरहें कहल जाइत अछि और ओहि परमात्मा के लेल कयल गेल कर्म निश्चयपूर्वक सत् अछि -एहेन कहल जाइत अछि ।।17.27॥

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।17.28।।

भावार्थ: हे अर्जुन! बिना श्रद्धा सँ कयल गेल हवन, देल गेल दान एवं कयल गेल तप और जे किछुओ कयल गेल शुभ कर्म अछि - ओ समस्त 'असत्'- एहि तरहें कहल जाइत अछि, ताहिलेल ओ ने तऽ अई लोक में लाभदायक अछि आ ने मरला के बादे ।।17.28॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्री कृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्याय :

॥17॥

***



अथाष्टादशोऽध्याय

मोक्षसंन्यासयोग



त्यागक विषय

अर्जुन उवाच:

सन्न्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ 18-1 ॥

भावार्थ: अर्जुन बजलाह - हे महाबाहो! हे अन्तर्यामी! हे वासुदेव! हम संन्यास और त्याग के तत्व के अलग-अलग बुझय चाहैत छी ॥ 1 ॥

श्रीभगवानुवाच:

काम्यानां कर्मणा न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ 18-2 ॥

भावार्थ: श्री भगवान बजलाह- कतेको पण्डितजन तऽ काम्य कर्म के (स्त्री, पुत्र और धन आदि प्रिय वस्तु के पयबाक लेल तथा रोग-संकटादिक निवृत्ति के लेल जे यज्ञ, दान, तप और उपासना आदि कर्म कयल जाइत अछि, ओकरे नाम काम्यकर्म अछि।) त्याग के संन्यास बुझैत छथि तथा दोसर विचारकुशल पुरुष सब कर्मक फल के त्याग के (ईश्वरक भक्ति, देवताक पूजन, माता-पितादि गुरुजनक सेवा, यज्ञ, दान और तप तथा वर्णाश्रम के अनुसार आजीविका द्वारा गृहस्थ जीवनक निर्वाह एवं शरीर संबंधी खान-पान इत्यादि जतेक कर्तव्यकर्म अछि, ओहि सबमें अई लोक और परलोकक सम्पूर्ण कामनाक त्यागक नाम सब कर्म के फल के त्याग अछि) त्याग कहल गेल अछि ॥ 2 ॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ 18-3 ॥

भावार्थः कईयेक विद्वान एहेन कहैत छथि जे कर्ममात्र दोषयुक्त अछि, ताहि लेल त्यागबाक योग्य अछि और दोसर विद्वान ई कहैत छथि जे यज्ञ, दान और तपरूपी कर्म त्यागबा योग्य नहि अछि ॥ 3 ॥

निश्चयं श्रृणु में तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः ॥ 18-4 ॥

भावार्थः हे पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ! संन्यास और त्याग, एहि दुनू में सँ पहिने त्याग के विषय में अहाँ हमर निश्चय सुनु। कियेक तऽ त्याग सात्विक, राजसी और तामसी भेद सँ तीन तरहक कहल गेल अछि ॥ 4 ॥

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ 18-5 ॥

भावार्थः यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करबाक योग्य नई अछि, जखन के ओ तऽ आवश्यक कर्तव्य अछि, कियेक तऽ यज्ञ, दान और तप -ई तीनू टा कर्म बुधियार लोकनि के पवित्र करय बला छनि ॥ 5 ॥

एतान्यपि तु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति में पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ 18-6 ॥

भावार्थः ताहिलेल हे पार्थ ! एहि यज्ञ, दान और तपरूपी कर्म के तथा दोसरो सम्पूर्ण कर्तव्यकर्म के आसक्ति और फल के त्याग अवश्य करबाक चाही, ई हमरा द्वारा निश्चय कयल गेल उत्तम मत अछि ॥ 6 ॥

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ 18-7 ॥

भावार्थः (निषिद्ध और काम्य कर्म के तऽ स्वरूपे सँ त्याग केनाइ उचिते अछि) परञ्च नियत कर्म के स्वरूप सँ त्याग केनाइ उचित नहि अछि। ताहि लेल मोह के कारण ओकर त्यागि देबाके तामसी त्याग कहल गेल अछि ॥ 7 ॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ 18-8 ॥

भावार्थः जे किछु कर्म अछि ओ सब दुःख रूपीये अछि - एहेन बुझिकय यदि कियो शारीरिक क्लेश के भय सँ कर्तव्य-कर्म के त्याग कय दिये, तऽ ओ एहन राजसी त्याग कईयो कऽ कोनो तरहें त्यागक फल के नहि पबैत अछि ॥ 8 ॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेअर्जुन ।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ 18-9 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! जे ई बुझैत छथिन जे शास्त्रविहित कर्म केनाइ हमर कर्तव्य अछि - एहि भाव सँ आसक्ति और फल के त्याग कयल जाइत अछि - वैह सात्त्विक त्याग मानल गेल अछि ॥ 9 ॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ 18-10 ॥

भावार्थ: जे मनुष्य अकुशल कर्म सँ द्वेष नहि करैछ आ कर्म में आसक्त नहि होइछ- ओ शुद्ध सत्त्वगुण सँ युक्त पुरुष संशयरहित, बुद्धिमान और सच में त्यागी अछि ॥ 10 ॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ 18-11 ॥

भावार्थ: कियेक तऽ कोने शरीरधारी मनुष्य द्वारा सम्पूर्णता सँ सब कर्मक त्याग केनाइ संभव नहि अछि, तें जे कर्मफल त्यागी अछि, वैह त्यागी अछि - एहेन छैक ॥ 11 ॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित् ॥ 18-12 ॥

भावार्थ: कर्मफल के त्याग नई करय बला मनुष्यक कर्म तऽ नीक, अधलाह आ भेटल-एहेन तीन तरहक फल मरबाक उपरांत अवश्य होइत अछि,

परञ्च कर्मफल के त्यागि दै बला मनुष्य के कर्मक कोनो काल में सेहो नहि होइत अछि ॥ 12 ॥

* * *

कर्म करबा लेल सांख्यसिद्धांतक कथन

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ 18-13 ॥

भावार्थ: हे महाबाहो! सम्पूर्ण कर्मक सिद्धि के ई पाँच टा हेतु कर्म के अंत करबाक लेल बतबय बला उपाय के सांख्य-शास्त्र में कहल गेल अछि, ओकरा अहाँ हमरा सँ बढियाँ सँ बुझी लिय ॥ 13 ॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ 18-14 ॥

भावार्थ: एहि विषय में अर्थात कर्म के सिद्धि में अधिष्ठान और कर्ता तथा अलग-अलग तरहक करण (जाहि-जाहि इंद्रियादिक और साधन द्वारा कर्म कयल जाइत अछि, ओकरे नाम करण अछि) एवं नाना प्रकारक अलग-अलग चेष्टा और ओहिना पाँचम हेतु दैव (पूर्वकृत शुभ अशुभ कर्म के संस्कारक नाम दैव अछि) अछि ॥ 14 ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ 18-15 ॥

भावार्थ: मनुष्य मोन, वाणी और शरीर सँ शास्त्रानुकूल अथवा विपरीत जेहो किछु कर्म करैत अछि-ओकर ई पाँचू कारण अछि ॥ 15 ॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ 18-16 ॥

भावार्थ: परञ्च एहेन भेला पर सेहो जे मनुष्य अशुद्ध बुद्धि (सत्संग और शास्त्रक अभ्यास सँ तथा भगवदर्थ कर्म और उपासना करबा सँ मनुष्यक बुद्धि शुद्ध होइत अछि, ताहिलेल जे ऊपर बताओल गेल साधन सँ रहित अछि, तखन बुझी जे ओकर उसकी बुद्धि अशुद्ध अछि) हेबाक कारण ओहि विषय में यानी कर्म के होयबा में खाली शुद्ध स्वरूप आत्मा कर्ता बुझैत अछि, ओ मलीन बुद्धि वाला अज्ञानी यथार्थ नहि बुझैत अछि ॥ 16 ॥

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ 18-17 ॥

भावार्थ: जाहि पुरुष के अन्तःकरण में 'हम कर्ता छी' एहेन भाव नहि अछि तथा जकर बुद्धि सांसारिक पदार्थ में और कर्म में लिप्त नहि होइत अछि, ओ पुरुष एहि सब लोक में मरिकय सेहो नहि मरैत अछि आ ने पाप सँ बन्हाईत छथि ॥ 17 ॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः ॥ 18-18 ॥

भावार्थ: ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय - ई तीन तरहक कर्म-प्रेरणा अछि और कर्ता, करण, और क्रिया- ई तीन तरहक कर्म-संग्रह अछि ॥18 ॥

***

तीनू गुण अनुसार ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुख के पृथक-पृथक भेद

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ 18-19 ॥

भावार्थ: गुणक संख्या करय बला में ज्ञान और कर्म तथा कर्ता गुणक भेद सँ तीन-तीन तरहक कहल गेल अछि,ओकरा सेहो अहाँ हमरा सँ खूब बढियाँ सँ सुनु ॥ 19 ॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ 18-20 ॥

भावार्थ: जाहि ज्ञान सँ मनुष्य अलग-अलग सब भूत में एकटा अविनाशी परमात्मभाव के विभागरहित समान भाव सँ स्थित देखैत अछि, ओहि ज्ञान के अहाँ सात्त्विक ज्ञान बुझू ॥ 20 ॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ 18-21 ॥

भावार्थ: लेकिन जे ज्ञान अर्थात जाहि ज्ञान के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूत में अलग-अलग तरहक अनेको भाव के अलग-अलग अछि, ओहि ज्ञान के अहाँ राजसी मानू ॥ 21 ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पंच तत्तामसमुदाहृतम् ॥ 18-22 ॥

भावार्थ: परञ्च जे ज्ञान एकटा कार्यरूपी शरीरे में सम्पूर्ण के समान जे आसक्त अछि तथा जे बिना युक्तिबला, तात्विक अर्थ सँ रहित और तुच्छ अछि- ओकरा तामसी कहल गेल अछि ॥ 22 ॥

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ 18-23 ॥

भावार्थ: जे कर्म शास्त्रविधि सँ नियत कयल और कर्तापनक घमण्ड सँ रहित हो तथा फल नई चाहय बला पुरुष द्वारा बिना राग-द्वेष के कयल गेल हो- ओ सात्त्विक कहाइत अछि ॥ 23 ॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ 18-24 ॥

भावार्थ: परञ्च जे कर्म बहुत परिश्रम सँ कयल गेल रहैत अछि तथा भोग के चाहय बला पुरुष द्वारा या अहंकारयुक्त पुरुष द्वारा कयल जाइत अछि, ओहि कर्म के राजसी कहल गेल अछि ॥ 24 ॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ 18-25 ॥

भावार्थ: जे कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य के नहि विचारि खाली अज्ञान सँ आरंभ कयल जाइत अछि, ओ तामसी कहाइत अछि ॥ 25 ॥

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ 18-26 ॥

भावार्थ: जे कर्ता संगरहित, अहंकारक बोल नई बाजय बला, धैर्य और उत्साह सँ युक्त तथा कार्य के सिद्ध भेला आ नहियो भेला में हर्ष -शोकादि विकार सँ रहित अछि - ओ सात्त्विक कहाइत अछि ॥ 26 ॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ 18-27 ॥

भावार्थ: जे कर्ता आसक्ति सँ युक्त कर्मक फल के चाहनिहार और लोभी अछि तथा दोसरा के कष्ट देबाक प्रवृत्तिबाला, अशुद्धाचारी और हर्ष-शोक सँ लिप्त अछि ओ राजसी कहाइत अछि ॥ 27 ॥

आयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोनैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ 18-28 ॥

भावार्थ: जे कर्ता अयुक्त, शिक्षा सँ रहित घमंडी, धूर्त और दोसराक जीविका के नाश करय बला तथा शोक करय बला, आलसी और दीर्घसूत्री अछि ओ तामसी कहाइत अछि ॥ 28 ॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं श्रृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥ 18-29 ॥

भावार्थ: हे धनंजय ! आब अहाँ बुद्धि और धृति के सेहो गुण के अनुसार तीन तरहक भेद हमरा द्वारा सम्पूर्णता सँ विभागपूर्वक कहाई बला सुनु ॥29 ॥

प्रवत्ति च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ 18-30 ॥

भावार्थ: हे पार्थ ! जे बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्ति मार्ग के, कर्तव्य और अकर्तव्य के, भय और अभय के तथा बंधन और मोक्ष के यथार्थ बुझैत अछि-ओ बुद्धि सात्त्विकी अछि ॥ 30 ॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ 18-31 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! मनुष्य जाहि बुद्धि द्वारा धर्म और अधर्म के तथा कर्तव्य और अकर्तव्य के सेहो यथार्थ नहि जनैत अछि, ओ बुद्धि राजसी अछि ॥31 ॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ 18-32 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! जे तमोगुण सँ घेरैल बुद्धि अधर्म के सेहो 'ई धर्म अछि' एहेन मानि लैत अछि तथा एहि तरहें दोसरो संपूर्ण पदार्थ के सेहो विपरीत मानि लैत अछि, ओ बुद्धि तामसी अछि ॥ 32 ॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ 18-33 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! जाहि अव्यभिचारिणी धारण शक्ति सँ मनुष्य ध्यान योग द्वारा मोन, प्राण और इंद्रियक क्रिया के धारण करैत अछि, ओ धृति सात्त्विकी अछि ॥ 33 ॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ 18-34 ॥

भावार्थ: परञ्च हे पृथापुत्र अर्जुन! परिणामक इक्षा बला मनुष्य जाहि धारण शक्ति द्वारा बहुत बेसी आसक्ति सँ धर्म, अर्थ और काम के धारण करैत अछि, ओ धारण शक्ति राजसी अछि ॥ 34 ॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ 18-35 ॥

भावार्थ: हे पार्थ! दुष्ट बुद्धि बला मनुष्य जाहि धारण शक्ति के द्वारा निद्रा, भय, चिता और दुःख के तथा उन्मत्तता के सेहो नहि छोड़ैत अछि माने धारण कयने रहैत अछि - ओ धारण शक्ति तामसी अछि ॥ 35 ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं श्रृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ 18-36 ॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ 18-37 ॥

भावार्थ: हे भरतश्रेष्ठ! आब तीन तरहक सुख के सेहो अहाँ हमरा सँ सुनु। जाहि सुख में साधक मनुष्य भजन, ध्यान और सेवादि के अभ्यास सँ रमण करैत अछि और जाहिसँ दुःखक अंत भऽ जाइत अछि, जे एहेन सुख अछि, ओ आरंभकाल में यद्यपि विष जँका प्रतीत होइत अछि,मुदा परिणाम में अमृत जँका अछि, ताहिलेल ओ परमात्मविषयक बुद्धि के प्रसाद सँ उत्पन्न होबय बला सुख सात्त्विक कहल गेल अछि ॥ 36-37 ॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ 18-38 ॥

भावार्थ: जे सुख विषय और इंद्रियक संयोग सँ होइत अछि, ओ पहिने - भोगकाल में अमृत जँका प्रतीत भेला पर सेहो परिणाम में विष जँका अछि ताहिलेल ओहि सुख के राजसी कहल गेल अछि ॥ 38 ॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ 18-39 ॥

भावार्थ: जे सुख भोगकाल में तथा परिणाम काल में सेहो आत्मा के मोहित करय बला अछि, ओ निद्रा, आलस और प्रमाद सँ उत्पन्न भेल सुख तामसी कहल गेल अछि ॥ 39 ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ 18-40 ॥

भावार्थ: पृथ्वी में या आकाश में अथवा देवता लोकनि में तथा एकरा अलावे और कतहु एहनो सत्त्व नहि अछि, जे प्रकृति सँ उत्पन्न एहि तीनू गुण सँ रहित हो ॥ 40 ॥

* * *

फल सहित वर्ण धर्म के विषय

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ 18-41 ॥

भावार्थ: हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के तथा शूद्र के कर्म स्वभाव सँ उत्पन्न गुण द्वारा विभक्त कयल गेल अछि ॥ 41 ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ 18-42 ॥

भावार्थः अंतःकरण के निग्रह केनाई, इंद्रिय सभ के दमन केनाइ, धर्मपालन के लेल कष्ट सहनाई, बाहर-भीतर सँ शुद्ध रहनाई, दोसराक अपराध के क्षमा केनाइ, मोन, इंद्रिय और शरीर के सरल रखनाई, वेद, शास्त्र, ईश्वर और परलोक आदि में श्रद्धा रखनाई, वेद-शास्त्रक अध्ययन-अध्यापन केनाइ और परमात्माक तत्त्व के अनुभव केनाइ- ई सब-के-सब ब्राह्मणक स्वाभाविक कर्म अछि ॥ 42 ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ 18-43 ॥

भावार्थः शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध में नई भगनाइ, दान देनाइ स्वामिभाव- ई सब-के-सब क्षत्रियक स्वाभाविक कर्म अछि ॥ 43 ॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ 18-44 ॥

भावार्थः खेती, गौ पालन और क्रय-विक्रय में सत्य व्यवहार ई वैश्यक स्वाभाविक कर्म अछि तथा सब वर्ण के सेवा केनाइ शूद्रक सेहो स्वाभाविक कर्म अछि ॥ 44 ॥



स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ 18-45 ॥

भावार्थ: अप्पन-अप्पन स्वाभाविक कर्म में तत्परता सँ लागल मनुष्य भगवत्प्राप्ति रूप परमसिद्धि के पबैत छथि। अप्पन स्वाभाविक कर्म में लागल मनुष्य जाहि तरहें कर्म कय परमसिद्धि पबैत छथि, ओहि विधि के अहाँ सुनु ॥ 45 ॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ 18-46 ॥

भावार्थ: जाहि परमेश्वर सँ संपूर्ण प्राणीक उत्पत्ति भेल अछि और जाहिसँ ई समस्त जगत् व्याप्त अछि, ओहि परमेश्वर के अप्पन स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजा कय मनुष्य परमसिद्धि के पबैत छथि ॥ 46 ॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ 18-47 ॥

भावार्थ: बढियाँ जँका चरण कय दोसराक धर्म सँ गुणरहित सेहो अप्पन धर्म श्रेष्ठ अछि, कियेक तऽ स्वभाव सँ नियत कय स्वधर्मरूपी कर्म के करैत मनुष्य के पाप नहि लगैत छनि ॥ 47 ॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ 18-48 ॥

भावार्थ: तें हे कुन्तीपुत्र! दोषयुक्त भेला पर सेहो सहज कर्म त्याग नहि करबाक चाही, किएक तऽ धुंआ सँ आगिक भाँति सभटा कर्म कोनो ने कोनो दोष सँ युक्त अछि ॥ 48 ॥

* * *

ज्ञाननिष्ठाक विषय

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्यासेनाधिगच्छति ॥ 18-49 ॥

भावार्थ: सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धिवाला, स्पृहारहित और जिवैत अंतःकरण बला पुरुष सांख्ययोग सँ ओहि परम नैष्कर्म्यसिद्धि के पबैत छथि ॥ 49 ॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ 18-50 ॥

भावार्थ: जे कि ज्ञान योग के परानिष्ठ अछि, ओहि नैष्कर्म्य सिद्धि के जाहि तरहेँ पाबि कऽ मनुष्य ब्रह्म के पबैत अछि, ओहि तरहेँ हे कुन्तीपुत्र! अहाँ संक्षेपे में हमरा सँ बुझू ॥ 50 ॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥18-51॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानस ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ 18-52 ॥

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ 18-53 ॥

भावार्थ: विशुद्ध बुद्धि सँ युक्त तथा हल्लुक, सात्त्विक और नियमित भोजन करय बला, शब्दादि विषय के त्यागि कय एकांत और शुद्ध देशक सेवन करय बला, सात्त्विक धारण शक्ति के द्वारा अंतःकरण और इंद्रिय के संयमित कय मोन, वाणी और शरीर के वश में कऽ लेबय बला, राग-द्वेष के सर्वथा नष्ट कय भलीभाँति दृढ़ वैराग्यक आश्रय लेबय बला तथा अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रह के त्यागिकय सदिखन ध्यान योग के परायण रहय बला, ममतारहित और शांतियुक्त पुरुष सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में अभिन्नभाव सँ स्थित होयबाक पात्र होइत अछि ॥51-53 ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ 18-54 ॥

भावार्थ: फेर ओ सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव सँ स्थित, प्रसन्न मोन बला योगी ने तऽ ककरो लेल शोक करैत अछि ने ककरो सँ आकांक्षे करैत अछि। एहन समस्त प्राणी में समान भाव बला योगी हमर पराभक्ति के पबैत छथि ॥ 54 ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥ 18-55 ॥

भावार्थ: ओहि पराभक्ति के द्वारा ओ परमात्मा अर्थात हमरा, हम जे छी जतेक छी, ठीक ओहने-के-ओहने तत्त्व सँ जानि लैत अछि तथा ओही भक्ति सँ हमरा तत्त्व सँ जानिकय तत्काले हमरा में प्रविष्ट भऽ जाइत अछि ॥ 55 ॥

***

भक्ति सहित कर्मयोगक विषय

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ 18-56 ॥

भावार्थ: हमर परायण भेल कर्मयोगी तऽ संपूर्ण कर्म के हरिदम करैत सेहो हमर कृपा सँ सनातन अविनाशी परमपद के पबैत छथि ॥ 56 ॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥ 18-57 ॥

भावार्थ: सबटा कर्म के मोन सँ हमरा में अर्पण कय तथा समबुद्धि रूपी योग के अवलंबन कय हमर परायण और निरंतर हमरा में चित्तवाला होउ ॥57 ॥

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्वमहाङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि ॥ 18-58 ॥

भावार्थ: एहि तरहें हमरा में चित्तबला होइयो कऽअहाँ हमर कृपा सँ सभटा संकट के अनायासे पार कऽजायब और यदि अहंकार के कारण हमर वचन के नई सुनब तऽ नष्ट भऽ जायब अर्थात परमार्थ सँ भ्रष्ट भऽ जायत ॥ 58 ॥

यदहङ्कारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ 18-59 ॥

भावार्थ: जे अहाँ अहंकारक आश्रय लय ई मानि रहल छी जे 'हम युद्ध नहि करब' तऽ अहाँक ई निश्चय मिथ्या अछि, किएक तऽ अहाँक स्वभाव अहाँके जबर्दस्ती युद्ध में लगा देत ॥ 59 ॥

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ 18-60 ॥

भावार्थ: हे कुन्तीपुत्र! जाहि कर्मक अहाँ मोह के कारण नहि करय चाहैत छी, ओकरा सेहो अप्पन पूर्वकृत स्वाभाविक कर्म सँ बन्हैल अनकर वश में भऽ कऽ करब ।।60 ॥

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया ॥ 18-61 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! शरीर रूपी यंत्र में आरूढ़ भेल संपूर्ण प्राणी के अन्तर्यामी परमेश्वर अप्पन माया सँ हुनकर कर्मक अनुसार भ्रमण करबैत सब प्राणी के हृदय में स्थित अछि ॥ 61 ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥ 18-62 ॥

भावार्थ: हे भारत! अहाँ सब तरह सँ ओहि परमेश्वरे के शरण में जाऊ। ओहि परमात्मे के कृपा सँ अहाँ परम शान्ति तथा सनातन परमधाम के पायब ॥ 62 ॥

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ 18-63 ॥

भावार्थ: एहि तरहें ई गोपनीयो सँ गोपनीय ज्ञान हम अहाँसँ कहि देलहुँ। आब अहाँ एहि रहस्ययुक्त ज्ञान पर पूर्णतया भलीभाँति विचार करू, जहिना चाहैत छी, ओहिना करू ॥ 63 ॥

सर्वगुह्यतमं भूतः श्रृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ 18-64 ॥

भावार्थ: संपूर्ण गोपनीयो सँ अति गोपनीय हमर परम रहस्ययुक्त वचन के अहाँ तैयो सुनु। अहाँ हमरा बहुत प्रिय छी, एहिसँ ई परम हितकारी वचन के हम अहाँकि कहब ॥ 64 ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ 18-65 ॥

भावार्थ: हे अर्जुन! अहाँ अप्पन मोन हमरा में लगाउ, हमर भक्त बनू, हमर पूजा करू आ हमरा प्रणाम करू। ऐना कयला सँ अहाँ हमरा पाबि लेब, ई हम अहाँसँ सत्य प्रतिज्ञा करैत छी किएक तऽ अहाँ हमरा लेल अति प्रिय छी ॥ 65 ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ 18-66 ॥

भावार्थ: संपूर्ण धर्म के अर्थात संपूर्ण कर्तव्य कर्म के हमरामें त्यागिकाय अहाँ खाली एकटा हमरा सन सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वरे के शरण में आबि जाऊ। हम अहाँके सब पाप सँ मुक्त कय देब, अहाँ शोक जुनि करू ॥ 66 ॥

***

श्रीगीताजी के माहात्म्य

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ 18-67 ॥

भावार्थ: अहाँके ई गीता रूपी रहस्यमय उपदेश कोनो काल में ने तऽ तपरहित मनुष्य सँ कहबाक चाही, ने भक्ति-रहित सँ आ ने नई सुनबाक

इक्षा बले सँ कहबाक चाही तथा जे हमरा दोष दृष्टि सँ देखैत छथि, हुनका तऽ कथमपि नहि कहबाक चाही ॥ 67 ॥

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्ति मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ 18-68 ॥

भावार्थः जे पुरुष हमरा में परम प्रेम कय एहि परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्र के हमरा भक्त लोकनि में कहबैक, ओहो हमरे पओता- एहि में कोनो संदेह नहि अछि ॥ 68 ॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ 18-69 ॥

भावार्थः एहिसँ बढिकय हमर प्रिय कार्य करय बला मनुष्य कियो नहि अछि तथा पूरा पृथ्वी पर में ओहिसँ बढिकय हमर प्रिय दोसर कियो भविष्य में होयबो नहि करत ॥ 69 ॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ 18-70 ॥

भावार्थः जे पुरुष एहि धर्ममय हमर दुनूक संवाद रूपी गीताशास्त्र के पढता, ओहिसँ सेहो हम ज्ञानयज्ञ सँ पूजित होयब - एहन हमर सोचनाइ अछि ॥ 70 ॥

श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ 18-71 ॥

भावार्थः जे मनुष्य श्रद्धायुक्त और दोषदृष्टि सँ रहित भऽ एहि गीताशास्त्रक श्रवणो करता, ओहो पाप सँ मुक्त भऽ उत्तम कर्म करय बला जँका श्रेष्ठ लोक के पओता ॥ 71 ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥ 18-72 ॥

भावार्थः हे पार्थ! की एहि (गीताशास्त्र) के अहाँ एकाग्रचित्त भऽ सुनलहुँ? और हे धनञ्जय! की अहाँक अज्ञानजनित मोह नष्ट भऽ गेल? ॥ 72 ॥

अर्जुन उवाचः

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वप्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ 18-73 ॥

भावार्थः अर्जुन बजलाह - हे अच्युत! अहाँक कृपा सँ हमर मोह नष्ट भऽ गेल औरहम स्मृति पाबि लेलहुँ अछि, आब हम संशयरहित भऽ स्थिर छी, अतः अपनेक आज्ञाक पालन करब ॥ 73 ॥

संजय उवाचः

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ 18-74 ॥

भावार्थ: संजय बजलाह - एहि तरहें हम श्री वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के एहि अद्भुत रहस्ययुक्त, रोमांचकारक संवाद के सुनलहुँ ॥ 74 ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ 18-75 ॥

भावार्थ: श्री व्यासजीक कृपा सँ दिव्य दृष्टि पाबिकय हम एहि परम गोपनीय योग के अर्जुनक प्रति कहैत स्वयं योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण सँ प्रत्यक्ष सुनलहुँ ॥ 75 ॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ।।18-76।।

भावार्थ: हे राजन! भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के एहि रहस्ययुक्त, कल्याणकारी और अद्भुत संवाद के पुनि-पुनि स्मरण कय हम बेर-बेर हर्षित भऽ रहल छी ॥ 76 ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ 18-77 ॥

भावार्थ: हे राजन्! श्रीहरि (जिनकर स्मरण कयला सँ पापक नाश होइत अछि हुनकर नाम 'हरि' अछि) के ओहि अत्यंत विलक्षण रूप के सेहो पुनि-पुनि स्मरण कय हमरा चित्त में महान आश्चर्य होइत अछि और हम बेर-बेर हर्षित भऽ रहल छी ॥ 77 ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ 18-78 ॥

भावार्थ: हे राजन! जतय योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण छथि और जतय गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन छथि, ओतहि श्री, विजय, विभूति और अचल नीति अछि- एहन हमर माननाइ अछि ॥ 78 ॥

***

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसन्न्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ 18 ॥

***



मैथिली दिवा के नाम सँ प्रसिद्ध काजल कर्ण आई परिचयक मोहताज व्यक्ति नहि छथि ।ई अमेरिका में रहितो मिथिला आ मैथिली के नाम बढा रहल छथि । मैथिली के प्रति हिनक समर्पण आई किनको सँ छुपल नहि अछि । हिनक लोकप्रियता के अंदाजा अही बात सँ लगा सकैत छी जे हिनका द्वारा गाओल गेल मैथिली गीत संगीत के सबटा विडियो के लाखों लोक देखैत छथि आ आम जनमानसके बहुत नीक लगैत छन्हि । अपने लोकनि के ईहो बुझिकय छगुन्ता लागत जे हिनकर अमेरिका में अपन कंपनी सेहो छन्हि जेकर शाखा दुनिया के अनेको देश में छैक ।

काजल जी एकटा कार्यशील महिले टा नहि छथि अपितु ओ अपन सुन्दरताक परचम अमेरिका में सेहो फहरौने छथि । ई अमेरिका में "मिसेज साउथ एशिया पॉपुलर" सन प्रतियोगिता जीत कऽ एकटा इतिहास रचने छथि ।

आई काजल कर्ण जीक टैगलाईन जे हर मैथिलानी के रटा गेल छनि "मिथिला के नारी कतबो मॉडर्न तैयो संस्कारी, दुनिया के कोनो कोन में रही अप्पन मातृभाषा सँ प्रेम करी" ।

'गर्व अछि मिथिलाक एहन बेटी पर'

विस्तृत जानकारी के लेल नीचा देल गेल लिंक पर काजल कर्ण सँ सम्पर्क कऽ सकैत छी
https://www.facebook.com/MaithiliDivaUSA/
https://www.youtube.com/channel/UCNrA_8K7bwXNhd9-wD2KGlw
https://instagram.com/kaajlkrnn?igshid=65afxvwtf8i0

Brosis
Publishers & Distributors
www.brosisindia.com
ISBN: 9789388519137



₹ : 299/-
£ : 7.99/-
$: 12.99/-
Cover Design: Shoeb Shahid